वन्यजीव पुलिसिंग

मध्य प्रदेश के जंगलों में अपराधीकरण का राज

CRIMINAL JUSTICE AND POLICE ACCOUNTABILITY PROJECT

लेखक:

1. मृणालिनी रवींद्रनाथ
2. संजना मेश्राम
3. निकिता सोनवणे
4. हर्ष किंगर
5. गरिमा सिदार
6. अफरा आसिफ
7. अदिति प्रधान
8. मुकेश तोमर
9. विकास यादव
10. आदित्य रावत
11. श्रेयस धामापुरकर
12. सिद्धार्थ लांबा
13. प्रशांत भावरे

अतिरिक्त शोध:

1. मनीषा आर्य
2. अनुराग तिरपुड़े
3. पल्लवी दिवाकर
4. कनिष्क सिंह
5. श्रेया गजभिये
6. पूजिता सिरिमल्ला
7. मुकुल राज
8. यशी वर्मा
9. संदेश गांगुर्दे

इलस्ट्रेशन्स:

उमा केथा

कवर डिज़ाइन:

मिया जोस

लेआउट:

आंचल अग्रवाल

इन्फोग्राफिक्स:

1. मोहम्मद समी
2. शुभांगी कृष्णन

अनुवादक:

मनीष शांडिल्य

विषयसूची

आभार 6
शब्दावली 7
कार्यकारी सारांश 9

1
परिचय 15-17

2
रिसर्चर का नोट 18-22

I. रिसर्चर और शोध विषयवस्तु के द्वैत का विखंडन 19
II. वन्यजीव शोध: भीतर से परिप्रेक्ष्य का निर्माण 20
III. सुरक्षा और जवाबदेही संबंधी उपाय 21
IV. वापस लौटाना 22

3
कार्य पद्धति: आंकड़ा संग्रह एवं विश्लेषण 24-31

I. पुलिस की कार्यप्रणाली के स्वरूप को उजागर करने के लिए मात्रात्मक आंकड़ों का उपयोग 24
II. मात्रात्मक शोध निष्कर्षों की सीमाएं 25
III. अपराधीकरण की प्रकृति को समझने के लिए गुणात्मक आंकड़ों का उपयोग 29
IV. नमूना चयन का तरीका और इनका आधार 30

4
संबंधित साहित्य की समीक्षा: वन प्रशासन की ऐतिहासिक संरचना 32-45

I. औपनिवेशिक काल में शिकार के तरीकों की निशानदेही 33
II. वन प्रशासन संबंधी कानून 34
III. डब्ल्यूपीए कानून का इतिहास 37
IV. आदिवासी प्रतिरोध तथा डब्ल्यूपीए के तहत विवादित भूमि पर वन विभाग की ज्यादती 41

5
वन्यजीव संरक्षण संबंधी पुलिस कार्यप्रणाली 46-53

I. आंकड़ों के बारे में 47

II. जिलावार गिरफ्तारी पर करीबी नजर 48
III. डब्ल्यूपीए अधिनियम 1972 और अन्य प्रासंगिक अधिनियमों के तहत दर्ज अपराध 50
IV. गिरफ्तार व्यक्तियों की जाति या समुदाय संबंधी विवरण 52

6

एफआईआर और अपराधीकरण के विवरण 54-62

I. शकिार संबंधी मामले 55
क. किसे अपराधी बनाया जा रहा है? 55
ख. अपराध के बारे में 55
ग. परिणाम 56
घ. बार-बार गवाही देने वाले व्यक्ति 57
ङ. शिकार करने की आरोपी महिलाएं 57
केस स्टडी #1 पी.एस. कोतवाली शहडोल (शहडोल) 57
केस स्टडी #2 पी.एस. अपराध शाखा (भोपाल) 58
च. अन्य कानून 58
छ. वन विभाग की संलिप्तता 59
II. बालू उत्खनन 59

7

वन विभाग राज: वन विभाग द्वारा दर्ज मामलों का विश्लेषण 63-77

I. किसका अपराधीकरण किया जा रहा है? 64
II. अपराध की कहानी कैसे गढ़ी जाती है? 67
क. अपराधों का वर्गीकरण 67
ख. शिकार का तरीका 68
ग. अपराध स्थल 69
घ. जब्त हथियार 70
III. शिकार किए गए जानवर 71
IV. मामलों की स्थिति 75

8

वन विभाग राज: क्षेत्र से प्राप्त अंतर्दृष्टि 78-103

I. आपराधिक कानून, संरक्षण और वन्यजीव सुरक्षा 79
क. कान्हा राष्ट्रीय उद्यान की पृष्ठभूमि 80
ख. जबरन पुनर्वास और 'उचित प्रक्रिया' 80
केस स्टडी #3 डब्ल्यूपीए और विस्थापन 83
II. कानून की जमीनी हकीकत: अपराध और इनके कानूनी परिणाम 83

क. विभिन्न प्रकार मामले 83
ख. फसलों की रक्षा जिस दौरान दुर्घटनावश जानवरों की मौत भी हो सकती है 84
ग. झूठे या बढ़ा-चढ़ाकर पेश किए गए मामले 85
घ. अवैध शिकार 85
ड़. शिकार का तरीका: 86
च. अधिकारों का अपराधीकरण 86
केस स्टडी #4 जंगली सूअर की समस्या 86
केस स्टडी #5 अधिकारों का अपराधीकरण - भाग 1 88
केस स्टडी #6 अधिकारों का अपराधीकरण - भाग 2 89
छ. गिरफ्तारी 90
केस स्टडी #7 गैर कानूनी गिरफ्तारियां 91
ज. जमानत और आरोपी व्यक्तियों द्वारा वहन किया गया खर्च 93
केस स्टडी #8 डब्ल्यूपीए के तहत जमानत प्राप्त करना 93
III. कानून जमीनी हकीकत: सत्ता शासन और किरदार 95
क. डब्ल्यूपीए के तहत मुखबिर 95
ख. डब्ल्यूपीए के तहत आदतन अपराधी और निगरानी 96
केस स्टडी #9 डब्ल्यूपीए के तहत आदतन अपराधी 97
ग. अपराध समाशोधन का अभाव 98
घ. अपराधों का समाशोधन 99
ङ. वन्यजीव संरक्षण कानूनी संरचना के अन्य पहलू 100
अ. आपराधिक कानून का मूल सिद्धांत: निर्दोषता की अवधारणा
ब. जांच के दौरान डीएफओ और एसडीओ के समक्ष दिए गए बयान की मान्यता

9
निष्कर्ष 104-106

आभार

यह रिपोर्ट भारत में वन्यजीव कानूनों के आपराधिकता की काली छाया में रहने वाले मध्य प्रदेश (एमपी) के अनुसूचित जनजातियों और अन्य वन आश्रित समुदायों के सदस्यों के अनुभवों और आलोचनाओं के आधार पर की गई एक साल लंबी शोध परियोजना का प्रतिफल है.

इस रिपोर्ट को तैयार करने में कई लोगों ने योगदान दिया है. हमारे इंटर्न संदेश गांगुर्दे, मनीषा आर्य, अनुराग तिरपुड़े, पल्लवी दिवाकर, कनिष्क सिंह, श्रेया गजभिये, पूजिता सिरिमल्ला, मुकुल राजऔर यशी वर्मा का शोध में सहयोग इस परियोजना को सफल बनाने में मूल्यवान रहा है. इस रिपोर्ट से संबंधित विचारपूर्ण टिप्पणियों और संपादकीय सलाह के लिए हम तेजस हरड़ और सुचरिता कांजीलाल का धन्यवाद् करते हैं. इस रिपोर्ट लेखन के दौरान अद्भुत धैर्य के साथ बहुमूल्य सलाह और प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए हम आचार समिति सदस्यों और शोध सलाहकारों अर्पिता कोडिवेरी, रिचर्ड टोप्पो, रैले जिपाओ, आरुषि कालरा और तेजस्विनी तभाने के आभारी हैं. इस रिपोर्ट के लिए रिसर्च फेलोशिप के जरिए सहयोग करने के लिए हम ठाकुर फैमिली फाउंडेशन (टीएफएफ) का विशेष रूप से धन्यवाद करते हैं.

उमा केथा और मिया जोस के इलस्ट्रेशन्स एवं आंचल अग्रवाल और आयुषी खंडेलवाल के डिजाइन ने इस रिपोर्ट को सजीव बना दिया है. इसे उमा केथा के इलस्ट्रेशन्स और मिया जोस द्वारा डिजाइन किए गए कवर पेज के जरिए जीवंत किया गया है. आंकड़ों के माध्यम से अपराधीकरण की कहानियों को साझा करने का प्रयास करने वाले शोधकर्ताओं की एक टीम के रूप में, डेटा एनालिसिस और इन्फोग्राफिक्स के जरिए विशेषज्ञता प्रदान कर मोहम्मद समी और शुभांगी कृष्णन नेबहुमूल्य योगदान दिया है. साक्षी सामंत और अक्षय तारफे के प्रयासों ने यह सुनिश्चित किया कि इस रिपोर्ट के निष्कर्षों को विभिन्न मंचों पर प्रचारित-प्रसारित हो.

बालाघाट, मंडला और भोपाल के सामाजिक न्याय, जाति-विरोधी और वन अधिकार कार्यकर्ताओं, विद्वानों, वकीलों, शिक्षाविदों, सहकर्मियों, संरक्षकों, दोस्तों, परिवार और हमारे अन्य सहयोगियों के प्रति हम गहरी कृतज्ञता प्रकट करते हैं और उनका हार्दिक धन्यवाद करते हैं, जिन्होंने हमारे रिसर्च और एडवोकेसी के लिए लगातार जानकारियां उपलब्ध कराईं और इसे प्रेरित किया. सुरक्षालाल भोंडे, विवेक पवार, अधिवक्ता विजय मरकाम, अधिवक्ता थानेश्वर टेकाम, मणिलाल धारवेई, अधिवक्ता रवि बेले और अधिवक्ता सुनील बेले का हम विशेष धन्यवाद करते हैं.

हम जयपाल सिंह मुंडा की विरासत के आभारी हैं, जिन्होंने संविधान सभा के अंदर और बाहर देशज मूल्यों, स्वायत्तता और स्वतंत्रता के सिद्धांतों को सुस्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति किया, जो हमें अपने कानूनों और संस्थानों की जातिवादी एवं औपनिवेशिक प्रकृति को समझने में मदद करते हैं. हमारा काम, लेखन और एक बंधन-मुक्त जीवन की कल्पना डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर से प्रेरित है, जिनकी दृष्टि हमारा पथ प्रदर्शक है.

अंत में, वन प्रशासन कानूनों और ब्राह्मणवादी आपराधिक न्याय प्रणाली के खिलाफ लड़ाई का नेतृत्व बैगा और गोंड समुदायों के रोजमर्रा के संघर्ष ने किया है. यह रिपोर्ट उनके अथक प्रतिरोध में योगदान देने का मामूली प्रयास है.

शब्दावली:

आदिवासी: 'आदिवासी' शब्द 'मूल निवासियों' को व्याख्यायित करता है, जिन्हें भारत के संविधान के तहत अनुसूचित जनजाति के रूप में निर्दिष्ट किया गया है. इसका अर्थ 'स्वदेशी' भी है, जिसकी उत्पत्ति अपने इतिहास और संसाधनों से समुदायों की हिंसक बेदखली के खिलाफ प्रतिरोध से हुई है.

बहुजन: यह शब्द बहुजन समाज पार्टी के संस्थापक मान्यवर कांशी राम द्वारा प्रचारित किया गया था. उन्होंने पाली शब्द 'बहुजन' का प्रयोग किया जिसका अर्थ है 'बहुसंख्यक'. यह शब्द भारतीय अल्पसंख्यकों को एकजुट करता है जिसमें हाशिए की जातियां, जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, मुस्लिम और अन्य धार्मिक अल्पसंख्यक शामिल हैं.

दलित: शाब्दिक अर्थ है 'टूटा हुआ'. दलित शब्द का इस्तेमाल ऐसे समूहों द्वारा अपनी दावेदारी के लिए किया जाता है जिन्हें पूर्व में 'अछूत' के रूप में वर्गीकृत किया गया था.

विमुक्त जनजातियां: ये वे समुदाय हैं जिन्हें औपनिवेशिक शासन के दौरान 'आपराधिक जनजाति अधिनियम', 1871 के तहत 'जन्मजात अपराधी' के रूप में 'अधिसूचित' किया गया था. अधिनियम को बाद में 1952 में निरस्त कर दिया गया और जनजातियों को विमुक्त जनजाति का दर्जा दिया गया.

जाति: जाति का प्रयोग 'कास्ट' शब्द के पर्यायवाची के रूप में किया जाता है. हालाँकि, जातियाँ निश्चित इकाइयाँ नहीं हैं और उन्हें 'उप-जातियों' में विभाजित किया जा सकता है, जो सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण पहचान और प्रतिष्ठा रखने वाले समूह होते हैं. वर्ण के विपरीत, जाति की अवधारणा किसी एक धार्मिक समूह से जुड़ी नहीं है, बल्कि यह सभी प्रमुख दक्षिण एशियाई धार्मिक समुदायों में पाई जाती है.

राष्ट्रीय उद्यान (नेशनल पार्क): जब भी राज्य सरकार को यह प्रतीत होता है कि एक क्षेत्र, चाहे अभयारण्य के भीतर हो या नहीं, को उसके पारिस्थितिक, जीव, वनस्पति, भू-आकृति विज्ञान या प्राणी विज्ञान से संबंध या महत्व के कारण और वन्य जीवन या इसके पर्यावरण के संरक्षण, प्रवर्धन या विकास के उद्देश्य से इसे राष्ट्रीय उद्यान के रूप में संघटित करने की जरूरत है, तो यह अधिसूचना द्वारा ऐसे क्षेत्र को राष्ट्रीय उद्यान घोषणा कर सकती है.

संभवतः सीमांत श्रेणी: वर्तमान अध्ययन के लिए, हमने मध्य प्रदेश राज्य की आधिकारिक सूचियों और दस्तावेजों के आधार पर निम्नलिखित समूहों से संबंधित उपनामों को वर्गीकृत किया है - 'सामान्य', 'एससी', एसटी', 'ओबीसी', 'डीएनटी', 'संभवतः सामान्य श्रेणी', 'संभवतः सीमांत श्रेणी', 'अवर्गीकृत' और 'शून्य' (0). 'संभवतः सीमांत श्रेणी' शब्द का प्रयोग ऐसे सभी उपनामों के लिए किया जाता है जो हाशिए के समुदायों के विभिन्न समूहों द्वारा धारण किए जाते हैं, न कि किसी भी उत्पीड़क जाति द्वारा.

संरक्षित क्षेत्र: इसका आशय राष्ट्रीय उद्यान, अभयारण्य, कंजर्वेशन रिजर्व या डब्ल्यूपीए की धारा 18, 35, 36ए और 36सी के तहत अधिसूचित सामुदायिक रिजर्व से है.

संभवतः सामान्य श्रेणी: ऐसे सभी उपनाम जो उत्पीड़क जातियों और उत्पीड़ित जातियों दोनों द्वारा धारण किए जाते हैं.

अवर्गीकृत: ऐसे उपनाम जिनका जातीय पहचान हम मध्य प्रदेश द्वारा तैयार किए गए आधिकारिक दस्तावेजों की विस्तृत खोज के बावजूद निर्धारित करने में असमर्थ रहे.

शून्य: गिरफ़्तारी से संबंधित रिकॉर्ड और एफआईआर जिनमें हमारे अध्ययन के दौरान की गई छानबीन में कोई उपनाम नहीं मिला.

कार्यकारी सारांश

मध्य प्रदेश दो मायनों में विशिष्ट है. पहला, वन क्षेत्रफल के मामले में यह भारत का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है और देश के सबसे बड़े संरक्षित क्षेत्रों में से कुछ यहाँ अवस्थित हैं. दूसरा, यह देश का सबसे ज्यादा जनजातीय आबादी वाला राज्य है, जहाँ का हर पांच में से एक निवासी अनुसूचित जनजाति समुदाय से है. इस व्यापकता को देखते हुए, वन प्रशासन संबंधी कानूनों का प्रबंधन लंबे समय से इसके सहायक आपराधिक कानून के साथ किया जाता रहा है, जिनके बारे सार्वजनिक रूप से जानकारी नहीं है.

हमारे शोध ने वन्यजीव संरक्षण के नाम पर पुलिस और वन विभागों की आपराधिकता और कार्यप्रणाली के स्वरुप को उजागर करने का प्रयास किया है. हम इस बात का अध्ययन करते हैं कि किन-किन लोगों का अपराधीकरण किया गया है और इसका क्या प्रभाव है तथा वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम, 1972 (डब्ल्यूएलपीए) के तहत किन गतिविधियों को प्रतिबंधित करने की मांग की गई है. ऐसा अध्ययन विशेष रूप से प्रासंगिक है क्योंकि वन प्रशासन तंत्र के तहत वन में रहने वाले समुदायों का 'विस्थापन' सर्वविदित है, लेकिन ऐसे क्षेत्रों में आपराधिक मुकदमा का सामना करने में वहन किए जाने वाले खर्च का अध्ययन पहले नहीं किया गया है. दिसंबर 2021 से, संसद ने वन्यजीवों की नई प्रजातियों को संरक्षित वन्यप्राणी का दर्जा करने, वन्यजीवों को प्रभावित करने वाले कुछ अच्छे व्यवहारों (जैसे अनुसंधान या शिक्षा उद्देश्यों के लिए) को अपराधकर्म से बाहर करने के लिए अपराध की श्रेणियों को फिर से परिभाषित करने और सजा का दायरे बढ़ाने के लिए इस कानून में संशोधन की कोशिश की है.

इसके लिए हमने पुलिस और वन विभाग दोनों के आंकड़ों (डेटा सेट) का विश्लेषण किया.

- हमने 2011 और 2020 के बीच 38 जिलों में की गई 780 गिरफ्तारी से संबंधित दस्तावेजों और पुलिस विभाग द्वारा 2016 और 2020 के बीच दर्ज 129 प्रथम सूचना रिपोर्ट (जिनमें से 34 डब्ल्यूएलपीए के तहत दर्ज शिकार और संबद्ध अपराधों से संबंधित हैं) का अध्ययन किया.

- इसके अलावा, हमने 2016 और 2020 के बीच 24 मंडलों में वन विभाग द्वारा दर्ज 1,414 अपराधों से संबंधित अभिलेखों और वन विभाग द्वारा दायर मामलों से संबंधित 8 चार्जशीट की छान-बीन की.

- अपने मात्रात्मक निष्कर्षों के पूरक के तौर पर, हमने कान्हा राष्ट्रीय उद्यान (मध्य प्रदेश का सबसे पुराना संरक्षित क्षेत्र और साथ ही ऐसा संरक्षित क्षेत्र जहाँ सबसे अधिक अपराध दर्ज किए जाते हैं) से सटे हुए बालाघाट और मंडला जिलों में अपराधीकरण का सामना कर रहे के ग्रामीण समुदायों के अनुभवों का गुणात्मक अध्ययन किया. मार्च-सितंबर 2022 के बीच, हमने आरोपी व्यक्तियों और उनके परिवारों, वन विभाग के उच्चाधिकारियों और क्षेत्र के तैनात विभाग के अफसरों, पुलिस अधिकारियों, इन मामलों के अभियोजन और बचाव पक्ष के वकीलों, कार्यकर्ताओं, पर्यावरण संरक्षण कर्ताओं और स्थानीय नागरिक समाज संगठनों के प्रतिनिधियों के साथ 45 साक्षात्कार किए.

हमारे निष्कर्षों ने वन पर निर्भर आजीविका के छिपे हुए अपराधीकरण का को उजागर किया है. वन अधिकारों की मान्यता दिए जाने की शुरुआत के बावजूद, वनों तक पहुँच प्राप्त करने के मामले में समुदाय

वन विभाग के नियंत्रण में रहते हैं, चाहे वे संरक्षित या गैर-संरक्षित क्षेत्र के वन हों. उपलब्ध कानून के बावजूद, व्यक्तिगत और सामुदायिक वन अधिकारों को संरक्षित क्षेत्रों के बफर जोन तक ही मान्यता मिल पाती है. इस कारण, वनोपज के नियमित संग्रह, जैसे सूखी लकड़ी या मशरूम का संग्रह, को संरक्षित क्षेत्र का उल्लंघन करने वाला अपराध माना जाता है. एक राष्ट्रीय उद्यान के मुख्य क्षेत्र (कोर एरिया) के भीतर रहने वाले पशु अक्सर भटक कर मानव बस्तियों की ओर चले आते हैं, जिससे मानव जीवन, कृषि और पशुधन को नुकसान होता है. ऐसे घटनाओं के लिए न तो वन विभाग द्वारा पर्याप्त मुआवजा दिया जाता है, न ही तहसीलदार द्वारा इन निपटारा किया जाता है, और आत्मरक्षा संबंधी किसी भी कार्रवाई को तुरंत अपराध ठहरा दिया जाता है.

I. अपराधीकरण की प्रकृति

अपराधीकरण की प्रकृति भी विषमतापूर्ण है. 2011 और 2020 के बीच पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए गए 29% से अधिक आरोपी व्यक्ति खास उत्पीड़ित जाति समूह (जिन्हें एक जाति श्रेणी के रूप में पहचाना जाता है) के थे. इस कम संख्या के बावजूद, अनुसूचित जनजातियों और अनुसूचित जातियों जैसे समूहों का प्रतिनिधित्व अपनी जिला-वार आबादी की तुलना में डेटा सेट में अधिक था. अध्ययन की गई प्राथमिकियों में, शिकार और संबद्ध अपराधों से संबंधित 29 अपराधों में से 66.6% मामले अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, गैर-अधिसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और संभावित रूप से हाशिए पर रहने वाले लोगों पर दर्ज किए गए थे और उनमें से अधिकांश रेत उत्खनन से संबंधित थे. वन विभाग द्वारा दर्ज किए गए अपराधों में, लगभग 78% आरोपी व्यक्ति (कुल 1,414 अपराधों में आरोपी 2,790 व्यक्ति) एक खास उत्पीड़ित जाति के थे.

डब्ल्यूएलपीए के तहत दर्ज अपराध जमानती होते हैं, ऐसे में पुलिस गिरफ्तारी अनिवार्य करने के लिए डब्ल्यूएलपीए के साथ अन्य कानूनों के तहत मामले दर्ज करने की रणनीति अपनाती है. पुलिस द्वारा की गई गिरफ्तारियों के विवरण के मुताबिक केवल 32% में, अकेले डब्ल्यूएलपीए के तहत मामला दर्ज किए गए थे. प्राथमिकी के आंकड़ों से पता चलता है कि शिकार से संबंधित 72% ऐसे मामलों में गिरफ्तारियां की गईं, जहां अपराध जमानती थे और बालू उत्खनन के मामलों में जमानत के संबंध में कोई जानकारी नहीं दी गई. यह अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य के दिशा-निर्देशों का संभावित उल्लंघन है, जिसमें कहा गया है कि सात साल से कम की सजा वाले मामलों में गिरफ्तारी आवश्यक नहीं है.

इस अध्ययन के मुताबिक सबसे अधिक शिकार किए जाने वाले वन्यजीव जंगली सुअर, तोता, मोर और मछली थे, शिकार किए गए कुल वन्यजीवों में इनका प्रतिशत क्रमशः 17.47%, 12%, 9.26% और 8.26% था. तोता वर्तमान में डब्ल्यूएलपीए की अनुसूची IV में है, जबकि जंगली सुअर अनुसूची III में, मोर (संभवतः राष्ट्रीय पक्षी के रूप में इसके महत्व के कारण) अनुसूची I (भाग- III) में और मछली किसी भी सूची के अंतर्गत संरक्षित जीव नहीं है. शिकार किए गए सभी वन्यजीवों में से करीब दो-तिहाई डब्ल्यूएलपीए की अनुसूची I या II के बजाय अधिनियम की अनुसूची III या IV का हिस्सा थे, जबकि अनुसूची I या II में शामिल जीव अधिक संकटग्रस्त हैं और वन्यजीव व्यापार के लिए इनके शिकार का जोखिम भी है.

II. पुलिस की कार्यप्रणाली संबंधी चिंताएं

दर्ज प्राथमिकियों में यह विवरण अस्पष्ट नहीं था कि आरोपी व्यक्तियों के कार्य किस तरह अपराध की श्रेणी में आते हैं. पुलिस ने 86 प्रतिशत प्राथमिकी में अपराध की जांच मुखबिरों (जिनकी पहचान प्रकट नहीं की जाती है) द्वारा दी गई सूचना के आधार पर की. अपराध दर्ज करने में, पुलिस बनी-बनाई भाषा का इस्तेमाल करती है, जिसमें विशिष्ट आरोपों के बिना प्रतिबंधित इलाके/वन क्षेत्र में कोई भी क्रियाकलाप को 'पारिस्थितिक सुरक्षा और पशु के प्राकृतिक वास के लिए खतरा' बताया जाता है.

वन विभाग के रिकॉर्ड में इसका कोई विवरण मौजूद नहीं होता है कि अपराध को कैसे अंजाम दिया गया. हमने पाया कि पहली बार विवरण तब दर्ज किया जाता है जब जांच पूरी हो जाने के बाद मजिस्ट्रेट के समक्ष संज्ञान लेने के लिए निजी शिकायत दर्ज की जाती है. प्रारंभिक अपराध रिपोर्ट और वन अपराध केस रजिस्टर दोनों में ही कोई विवरण दर्ज नहीं होता है. पुलिस और वन विभागों की ये रणनीतियाँ अपराध का निर्धारण करने में प्रयोग की जाने वाली विवेकाधीन शक्ति को दर्शाती हैं, खासकर जब कोई स्पष्ट आरोप दर्ज नहीं किया गया हो.

वन विभाग के अभिलेखों में मौजूद लगभग 41.44% मामलों में संरक्षित पशु के शिकार के तरीके का उल्लेख नहीं था. वन्यजीव अपराध जांच नियमावली के हिस्से के रूप में इसे कैसे दर्ज किया जाए, इसका कोई मानक तरीका नहीं है. 51.27% मामलों में, कोई बरामदगी की सूचना नहीं मिली और कई मामलों में, जहां शिकार की तरीका ज्ञात था, हथियार की जब्ती के बिना मामले दर्ज किए गए, जो प्रक्रियात्मक रूप से सही नहीं है.

हमने उनके रिकॉर्ड में यह भी पाया कि 'घटनास्थल' (कथित अपराध की जगह) को निरूपित करने संबंधी मानक पद्धति का अभाव था, और इससे संबंधित विवरण ज्यादातर अस्पष्ट थे. अक्सर ऐसे रिकॉर्ड में 'घटनास्थल' के रूप में एक गाँव के नाम का उल्लेख मिला लेकिन यह निर्दिष्ट नहीं किया था कि यह गाँव किस वन क्षेत्र के अंतर्गत आता है. इसके अलावा, विशिष्ट स्थानीय भौतिक सूचक को केवल तालाब, नदी, घाट, या पुल, स्कूल या बाजार के पास के रूप में दर्ज किया गया था. इस प्रथा के कारण, अपराध स्थल के बारे में जानना मुमकिन नहीं हो पाता है.

III. आजीविका और वन अधिकारों को बाधित करना

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, हमारे द्वारा आरोपी व्यक्तियों और उनके परिवारों और वन-आश्रित समुदायों के साथ किए गए साक्षात्कारों में, कुछ सामान्य विषय सामने आए: वन विभाग द्वारा विस्तृत विवेकाधीन शक्तियों के इस्तेमाल से लोगों के जीवन की सभी भौतिक स्थितियां प्रभावित हो रही रही, जंगलों से होने वाली आय की अनिश्चितता बनी रहती है और साथ ही लोगों को आपराधिक पृष्ठभूमि का तथा आत्मरक्षा को अपराधीकरण करार दिया जाता है.

अ. फसल हानि और आत्मरक्षा

मंडला और बालाघाट के पार, पार्क के मुख्य क्षेत्रों से सटे क्षेत्रों में, हमें जंगली सूअर की बढ़ती आबादी के

कारण हुए नुकसान की शिकायतें मिलीं. मवई और नारायणगंज की गैर-संरक्षित वन क्षेत्र में भी, यह देखा गया कि जंगली सूअर झुंड में यात्रा करते हैं, रात में एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं, फसल को रौंद डालते हैं और असमान रूप से फसल खाकर खेत को नुकसान पहुंचाते हैं. हमें ऐसे उदाहरण भी मिले जहां लोग इन जानवरों द्वारा घायल भी हुए, लेकिन उन्हें वन विभाग या तहसीलदार (जो फसल नुकसान संबंधी मुआवजे के दावों का निपटारा करते हैं) से चिकित्सा सहायता नहीं मिली.
जहां लोगों ने अपने खेत के चारों ओर फंदा (बाड़) लगाने की कोशिश की, जंगली सूअरों ने अक्सर बाड़ को तोड़ दिया और फसलों को नुकसान पहुंचाया या वे बाड़ में फंस कर मर गए. हालाँकि ऐसा आत्मरक्षा के लिए किया गया, लेकिन इसके बावजूद वन विभाग द्वारा इसके लिए शिकार करने का आपराधिक मामला दर्ज किया गया. विभाग के आंकड़ों के छान-बीन से यह और स्पष्ट हुआ, जिसके मुताबिक फंदा लगाकर (बाड़ का उपयोग कर) 'शिकार' करना शिकार का सबसे प्रचलित तरीका सामने आया और कुल मामलों के 14.5% में इस तरीके से शिकार किया गया. इससे पता चलता है कि दुर्घटना से हुई मौतों के एक बड़े हिस्सा को शिकार के रूप में दर्ज किया जाता है, संरक्षित क्षेत्र में जानवरों के प्राकृतिक आवास में बाधा डालने वाली कार्रवाई और सरकारी संपत्ति की चोरी बताया जाता है. (एक मृत जानवर को राज्य की संपत्ति माना जाता है, जबकि समुदाय जानवरों के साथ सहजीवी तरीके से रहते हैं और कृषि के स्थान पर भोजन के लिए उनका उपभोग करते हैं).

फसल को हुए नुकसान का मुआवजा मिलना मुश्किल होता है. इसका एक कारण यह है कि जहाँ एक ओर राष्ट्रीय उद्यान में बफर जोन का प्रशासन वन विभाग के अंतर्गत आता है, वहीं इस क्षेत्र के गांवों को स्वयं को राजस्व गांव (वन ग्राम की पहले की स्थिति के मुताबिक) बना दिया गया है और ऐसे में ये गाँव तहसीलदार के अधिकार क्षेत्र में आते हैं. वन विभाग ऐसे गांव के जीवन के हर पहलू में मौजूद होता है - जैसे कि चिकित्सा शिविर लगाना, स्कूली शिक्षा का प्रबंधन, वनोपज के उपयोग की मंजूरी, गांव में नहरों आदि का निर्माण. साठ ही वह महुआ/तेंदू की बिक्री के लिए एक बिचौलिए के रूप में भी काम करता है और आपराधिक मुकदमा भी चलाता है. हालाँकि वे जंगल में शिकारी जानवरों द्वारा मानव और मवेशियों को घायल किए जाने पर इलाज़ करते हैं, लेकिन वे फसल के नुकसान के लिए मुआवजे की मंजूरी नहीं देते हैं. इसके लिए, तहसील से एक पटवारी बर्बाद फसल का आकलन करने और नुकसान का अनुमान लगाने के लिए आता है: हालाँकि ऐसा भी नियमित तौर पर नहीं होता है, जबकि जंगली सूअर, चीतल और सांभर जैसे जानवर नियमित रूप फसल का नुकसान करते हैं. यह प्रशासनिक ढांचा प्रभावी नहीं है, इससे आपराधिक मुकदमे दर्ज होते हैं और ग्रामीणों को मुआवजा प्राप्त करने, जिसकी कोई गारंटी नहीं होती, गाँव से बहुत दूर स्थित तहसीलदार कार्यालय का चक्कर काटना पड़ता है.

ब. वन अधिकार कानून के तहत स्वीकृत गतिविधियों का अपराधीकरण

वन विभाग ने डब्ल्यूएलपीए के तहत मछली पकड़ने के लिए भी मामले दर्ज किए हैं और मछलियों को अनुसूची V में रखा है. हालांकि यह वर्गीकरण वैधानिक रूप से मान्य नहीं है, लेकिन यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि वन विभाग ने डब्ल्यूपीए के तहत 2016-2020 के बीच मछली पकड़ने के 57 और 2010-20 के बीच 134 मामले दर्ज किए. हालांकि कुछ मामलों में शिकार से संबंधित धारा 9 का गलत इस्तेमाल किया गया, अधिकांश मामलों में भारतीय वन अधिनियम या डब्ल्यूएलपीए के तहत अतिरिक्त आरोप भी लगाए गए थे जो कि राष्ट्रीय उद्यान में प्रतिबंधित प्रवेश या वन्यजीवों के प्राकृतिक आवासों को बाधित करने से संबंधित थे. इस बारे में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं बताया गया कि कान्हा में मछली पकड़ने से जानवरों

का प्राकृतिक आवास कैसे बाधित हुआ, हालांकि वन विभाग के कुछ अधिकारियों ने बताया कि आपराधिक मामले नदी में जहर (सल्फर गोला) डालने से संबंधित हैं. तथापि, डेटा सेट के मामलों में केवल मछली पकड़ने के जाल के आलावा कोई संबंधित सामग्री बरामदगी नहीं की गई थी.
इसी तरह, सूखी लकड़ी, मशरूम, शहद और अन्य वन उपज के मामले भी हैं जो राष्ट्रीय उद्यान के रूप में परिवर्तित क्षेत्र में प्रचुरता में पाए जाते हैं. अधिकारियों के विवरण में इस पर मतभेद सामने आया है कि कोर और बफर क्षेत्रों के बीच कौन-कौन सी गतिविधियों की अनुमति है, कोर क्षेत्र कहाँ से शुरू होता है और वन अधिकारों के तहत किन प्रतिबंधों में छूट प्रदान की गई है. वन अधिकार अधिनियम, 2006 की धारा 3(1)(डी) के तहत स्थानीय जल स्रोतों से प्राप्त मछली और अन्य उत्पादों पर अधिकारों को सामुदायिक अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है. इसलिए, डब्ल्यूएलपीए के तहत ऐसे मामले इन वनवासी समुदायों को पहले से प्राप्त अधिकारों का अपराधीकरण करते हैं.

IV. अभियोजन संबंधी खर्च

अधिनियम के किसी भी धारा के उल्लंघन के लिए धारा 51 के तहत विस्तृत दंड का प्रावधान किया गया है और इसके तहत अपराधी को 3 साल तक की सजा और/या पच्चीस हजार रुपये तक का जुर्माने हो सकता है. अनुसूची I या II के तहत संरक्षित किसी जानवर से संबंधित अपराध या शिकार (धारा 9) या अभयारण्य अथवा राष्ट्रीय उद्यान के सीमाओं में बदलाव (धारा 27) के मामलों में तीन से सात साल के कारावास और दस हजार रुपये तक के जुर्माने का प्रावधान है. लाइसेंस की शर्तों के उल्लंघन या वन्यजीव के शरीर के हिस्सों के व्यापार के लिए किए गए अपराधों को अलग तरह से दंडित किया जाता है.

ऐसे अपराध के मामलों का निपटारा प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट/मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाता है न कि सत्र न्यायालय द्वारा. मजिस्ट्रेट स्तर पर का निपटारा किए जाने अन्य अपराधों के विपरीत, डब्ल्यूएलपीए (धारा 51(5)) उम्र, व्यवहार, आपराधिक पूर्ववृत्त की कमी और एक संरक्षित क्षेत्र में शिकार करने या वन्यजीव व्यापार में संलग्न होने से संबंधित अपराध की परिस्थितियों के आधार पर अच्छे आचरण की परिवीक्षा (सीआरपीसी की धारा 360 के तहत प्रदत्त शक्ति) पर रिहाई को प्रतिबंधित करता है. विभिन्न अनुसूचियों में वन्यजीव कानून में प्रदत्त सुरक्षा के विभिन्न स्तरों के आधार पर सजा को वर्गीकृत नहीं किया गया है.

इस प्रकार के अभियोजन का प्रावधान, नीचे चर्चित वन विभाग को प्रदत्त जांच की अबाधित शक्तियों के साथ, के परिणामस्वरूप वनवासी समुदायों का लंबे समय तक और लगातार अपराधीकरण हुआ है. रिपोर्ट में बेगुनाही साबित करने की जिम्मेदारी, कम गंभीर अपराधों के मामलों में समझौते, जांच की स्वतंत्रता से संबंधित अन्य प्रक्रिया संबंधी पहलुओं की विस्तार से पड़ताल की गई है.

अ. लंबित मामले:

- साल 2016-2020 के बीच वन विभाग द्वारा दायर किए गए 1414 मामलों वाले डेटा सेट में, 95% से अधिक मामले अभी भी अनिर्णीत थे. 727 मामले (51%) न्यायालय में लंबित थे और 627 मामले (44.3%) विभागीय कार्यवाही के अधीन थे. 35 मामले (2.4%) बिना किसी आगे की कार्यवाही के बंद कर दिए गए, संभवतः अज्ञात व्यक्तियों, जिन्हें गिरफ्तार नहीं किया जा सका, के खिलाफ दर्ज अपराधों के कारण ऐसा हुआ.

वन्यजीवों (अनुसूची I से अनुसूची V के अंतर्गत संरक्षित वन्यजीव) के शिकार के आरोपी व्यक्तियों के साथ साक्षात्कार से प्राप्त मात्रात्मक आंकड़ों से हमें कुछ रुझान प्राप्त हुए हैं. ये रुझान 16 मामलों की हमारी समीक्षा से मेल खाते हैं, इनमें में से अधिकांश 4-5 वर्षों से लंबित हैं. कुछ मामले 7-8 साल से चल रहे थे और एक मामला 16 साल से लंबित था जिसमें एक आरोपी की सुनवाई के दौरान मौत हो गई थी. हमारे फील्ड वर्क से पता चलता है कि मजिस्ट्रेट आमतौर पर जमानत खारिज कर देते हैं. साथ ही वन्यजीव अपराधों से संबंधित अभियोजन और बचाव पक्ष के वकीलों के साक्षात्कार से यह सामने आया कि आमतौर पर जमानत उच्च न्यायालय से मिल पाती है.

ब. आरोपी व्यक्तियों द्वारा वहन किया जाने वाला खर्च

आरोपी व्यक्ति की गिरफ्तारी के बाद उसे आगे की कानूनी कार्यवाही जारी रखने में भारी खर्च वहन करना पड़ता है. जमानत के लिए औसतन पंद्रह से बीस हजार रुपये खर्च करने पड़ते हैं. साक्षात्कार के दौरान बताया गया कि मुकदमे की सुनवाई के दौरान अदालत में हर पेशी इस खर्च में इजाफा करती है. इस दौरान प्रत्येक आरोपी व्यक्ति को औसतन दो से तीन सौ रुपये वकील की फीस, अदालत के कर्मचारियों को घूस देने और अपने गांव से मजिस्ट्रेट कोर्ट तक आने-जाने में खर्च करने पड़ते हैं. कुछ गांवों में हमने पाया कि इस भारी खर्च की पूर्ति के लिए समुदाय के सदस्य अनिवार्य पेशी के लिए अदालत जाने हेतु एक-दूसरे से उधार लेते हैं. बड़ी संख्या में लोग स्थानीय साहूकारों से भी कर्ज, कभी-कभी ऊँचे ब्याज दर पर, लेते हैं मामलों का लंबे समय तक लंबित रहना और इस दौरान चलने वाली सुनवाई में शामिल होने का भारी खर्च अल्प वित्तीय संसाधनों वाले आरोपी व्यक्तियों को कर्ज के दुष्चक्र में डाल देता है.

निष्कर्ष

यह रिपोर्ट जंगलों पर वन विभाग के नियंत्रण के अपारदर्शी तरीके का पता लगाने और राष्ट्रीय उद्यानों में पर्यावरण संरक्षण रणनीतियों के भारी बोझ के जरिए व्याप्त पुलिस कार्यप्रणाली की जातिवादी प्रकृति को उजागर करने का एक प्रयास है. डब्ल्यूएलपीए की जड़ें पूर्व-औपनिवेशिक और औपनिवेशिक कानूनों में हैं. यह कानून एक ऐसा 'संरक्षित क्षेत्र' (पीए) बनाता है जिसकी सीमाओं का कोई अतिक्रमण न हो. ऐसे क्षेत्र स्थानीय समुदायों के परामर्श के बिना बनाए गए, जो अपनी आजीविका के लिए परंपरागत रूप से इन वन क्षेत्रों पर निर्भर हैं. आपराधिक कानून के प्रावधानों के माध्यम से संरक्षण के इस कथित 'वैज्ञानिक' दृष्टिकोण ने विस्थापन, उत्पीड़ित समुदायों के अपराधीकरण, वन विभाग के के हाथों उत्पीड़न को जन्म दिया है. हमें उम्मीद है कि यह रिपोर्ट वनवासी समुदायों के ऊपर 'कानून और व्यवस्था' के खोखलेपन और अपराधीकरण के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव की एक झलक पेश करती है.

1. परिचय

वन्यजीव संरक्षण अधिनियम (डब्ल्यूपीए), 1972 का उद्देश्य देश के वनस्पतियों और जीवों की सुरक्षा और संरक्षण के माध्यम से पारिस्थितिक सुरक्षा बनाए रखना है. इस कानून की उत्पत्ति भारतीय वन अधिनियम (आईएफए), 1865 से जुड़ी है, जिसे अंतिम बार 1927 में संशोधित किया गया था और भारत की स्वतंत्रता के बाद देश में बने वन प्रशासन संबंधी कानून अभी भी मूलतः इसी पर आधारित हैं. पहले के कानून में मौसमी शिकार की अनुमति थी जिसमें बंदूक जैसे आधुनिक हथियारों का इस्तेमाल किया जा सकता था, 1972 के अधिनियम में पहली बार सभी प्रकार के शिकार पर प्रतिबंध लगाए गए और बाद के संशोधनों में यह प्रतिबंध जारी रहा. यह कानून उन संरक्षण मानदंडों के तहत अस्तित्व में आया था जो 1970 के दशक के दौरान वन्यजीव संरक्षकों के विचारों और अंतर्राष्ट्रीय गतिविधियों से प्रभावित होकर सामने आए थे. ऐसा करते हुए वन आश्रित समुदायों की आजीविका और वन एवं वन्य जीवन के साथ उनके सह-अस्तित्व को ध्यान में नहीं रखा गया. हालिया वन्यजीव (संरक्षण) संशोधन विधेयक, 2021 एक और प्रतिगामी कदम है. इसमें लुप्तप्राय प्रजाति अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर सम्मेलन (सीआईटीईएस) के अनुरूप संरक्षित प्रजातियों की संख्या बढ़ाने और कानून के उल्लंघन के लिए जुर्माना बढ़ाने का प्रस्ताव है. इस क्रम में जंगल के आस-पास रहने वाली स्थानीय आबादी पर कानून के प्रभाव का कोई आकलन नहीं किया गया है.

वन प्रशासन कानूनों में उपनिवेशवाद के तर्क अभी भी मौजूद हैं जैसा कि संरक्षित क्षेत्रों के निर्माण के रूप में जमीनी स्तर पर दिखाई देता है. औपनिवेशिक वन कानूनों की जड़ें पुलिस नौकरशाही में निहित थीं, जिसमें पुलिस की शक्ति पर समुचित नियंत्रण का अभाव था. इन कानूनों ने औपनिवेशिक सरकार को किसी भी वनभूमि को संरक्षित वन घोषित करने का अधिकार दिया, जिससे वन आश्रित समुदायों का विस्थापन हुआ. इसके अवशेष डब्ल्यूपीए कानून में हैं जिसके तहत पहले की तरह ही संरक्षित क्षेत्र बनाए जाते हैं.

आपराधिक कानूनी ढांचे पर आधरित वन प्रशासन कानून द्वारा वन आश्रित समुदायों के जीवन पर व्यापक नियंत्रण रखना जारी है, जिनमें जंगल के बाहरी इलाकों में उनकी गतिविधि को प्रतिबंधित करने से लेकर बिना अधिकार के उनकी तलाशी लेना तक शामिल है. यह रिपोर्ट अपराधीकरण की इस संरचना और वन आश्रित समुदायों पर इसके प्रभाव का एक अनुभवजन्य दस्तावेज है.

यह शोध आपराधिक कानूनों और स्व-शासन एवं सहभागी लोकतंत्र के मूल्यों पर आधारित पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम,1996 (पेसा) एवं अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 (एफआरए) कानूनों के बीच मौजूद तनावों का भी दस्तावेज है. एफआरए के तहत गारंटी किए गए व्यापक अधिकारों, जिनमें खेती के निजी अधिकार, व्यक्तिगत अधिकार, सामुदायिक अधिकार और वन में निवास संबंधी अधिकार शामिल हैं, को बेरोकटोक लागू करना संभव नहीं हो पा रहा है क्योंकि वन अधिकारियों के अनुचित दखल ने इस कानून को बस कागजों तक सीमित कर दिया दिया है. वन संरक्षण अधिनियम (एफसीए), 2022 में हाल ही में किए गए संशोधन के जरिए एफआरएमें और भी कटौती की गई है. इन संसोधनों के जरिए केंद्र सरकार को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह वनों के मामले में राज्य सरकार द्वारा एफआरए के तहत वन आश्रित समुदायों की सहमति लेने और उनके अधिकारों को सुनिश्चित करने से पूर्व वन से जुड़े आदेश दे सकती है.

भारत में वन प्रशासन के चारों ओर मौजूद जटिल आपराधिकता के जाल के बावजूद, अपराधीकरण के उस स्वरुप की गांठे खोलने के सीमित प्रयास हुए हैं जिस पर भारत का वन प्रशासन आधारित है. मध्य प्रदेश (एमपी) में डब्ल्यूपीए पर हमारा शोध यह समझने के लिए महत्वपूर्ण है कि वन आश्रित समुदायों, वन्यजीव

संरक्षण और वन प्रशासन के पारस्परिक संबंधों के बीच आपराधिक कानून के जरिए कैसे तालमेल बिठाया जाता है और मध्य प्रदेश में पुलिस एवं वन विभाग के द्वारा इसे कैसे जबरन लागू किया जाता है. देश में सबसे अधिक संरक्षित क्षेत्र मध्य प्रदेश में हैं और निरंतर संरक्षण प्रयासों के कारण यह बाघों की सबसे बड़ी आबादी (यह 'टाइगर स्टेट' होने का गौरव रखता है) का निवास स्थान है. संरक्षण और वन्य जीवन पर्यटन के प्रमुख विचारों के अनुरूप एक कानून के रूप में डब्ल्यूपीए अपने असली स्वरुप में मध्य प्रदेश में सामने आता है. इसके अलावा, यह देखते हुए कि रोज़मर्रा की पुलिस कार्यप्रणाली कानूनों के कार्यान्वयन का प्राथमिक साधन है, वन्यजीव संबंधी पुलिस कार्यप्रणाली के तंत्र को उजागर करना महत्वपूर्ण हो जाता है. पुलिस और वन विभाग जैसे औपनिवेशिक संस्थानों के कामकाज के तौर-तरीकों को समझने के लिए भी वन्यजीव संबंधी पुलिस कार्यप्रणाली का अध्ययन करना महत्वपूर्ण है, खासकर भारतीय समाज के जातिवादी ढांचे के भीतर इसकी जकड़न के संदर्भ में.

विषय की बारीकियों के साथ-साथ अपराधीकरण के व्यापक स्वरूपों का विश्लेषण करने के लिए, यह अध्ययन मात्रात्मक और गुणात्मक विधियों - दोनों पर आधारित है जो वन्यजीव संबंधी पुलिस कार्यप्रणाली के तौर-तरीकों को उजागर करने में मदद करता है. अपराधीकरण के व्यापक स्वरूपों को दर्शाने करने के लिए गिरफ्तारी संबंधी रिकॉर्ड, प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) और वन विभाग के अपराध रजिस्टर के मात्रात्मक विश्लेषण का सहारा लिया गया है. इस अध्ययन को समग्रता प्रदान करने के लिए बालाघाट और मंडला जिलों, जो मध्य प्रदेश के सबसे पुराने संरक्षित क्षेत्रों में से एक कान्हा राष्ट्रीय उद्यान का हिस्सा हैं, में पांच महीने की अवधि का फील्ड रिसर्च किया गया. इसमें पुलिस और वन विभाग के कर्मियों, डब्ल्यूपीए के तहत अभियुक्तों, ऐसे अभियुक्तों के वकीलों और वन्यजीव संरक्षण एवं वन प्रशासन के मुद्दों पर काम करने वाले कार्यकर्ताओं के साक्षात्कार शामिल हैं. हालांकि यह अध्ययन मध्य प्रदेश तक ही सीमित है, इसके निष्कर्ष वन आश्रित समुदायों के अधिकारों के अपराधीकरण पर बड़े विमर्श को प्रस्तुत करते हैं. हम आशा करते हैं कि यह शोध अपराधीकरण के दूरगामी प्रभावों पर बहुत आवश्यक विमर्श की शुरूआत करेगा.

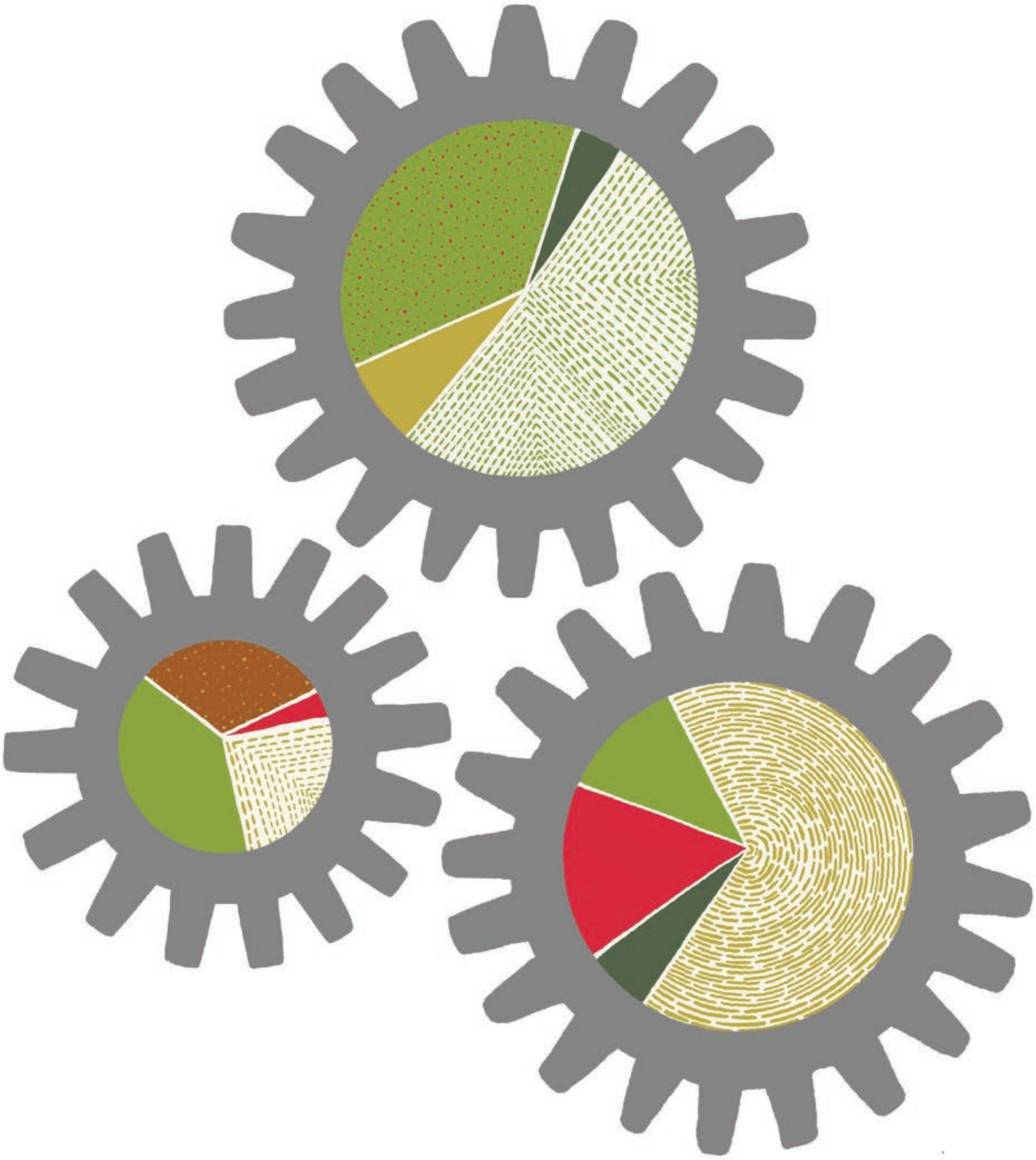

2. रिसर्चर का नोट

I. रिसर्चर और शोध विषयवस्तु के द्वैत का विखंडन

जाति-विरोधी मूल्यों में दृढ़ यकीन रखने वाले संगठन के रूप में, सीपीए प्रोजेक्ट ज्ञान अर्जन के ब्राह्मणवादी तरीकों में निहित हिंसा से परिचित है जो उत्पीड़ित जाति और नृजातीय समुदायों के जीवंत अनुभवों पर कब्ज़ा कर लेने का पर्याय बन गया है. न्याय के वितरणात्मक ढाँचे के भीतर काम करते समय, सीपीए प्रोजेक्ट की ज्ञान सृजन नीति इस सिद्धांत पर आधारित है कि ज्ञान उत्पादन एक सामूहिक प्रयास होना चाहिए. हम ब्राह्मणवादी ज्ञान पद्धति के बरक्स हाशिए के विविध समुदायों के जीवंत अनुभवों को ज्ञान प्रणालियों और सिद्धांत का आधार बनाते हैं, ताकि ज्ञानगत हिंसा को चुनौती दी जा सके और ज्ञान प्रणालियों, जिसे ब्राह्मण मस्तिष्क की उपज माना जाता है, को विकेंद्रीकृत किया जा सके. गोपाल गुरु भारत में समाज विज्ञान के असमान धरातल को खास तौर से द्विज ब्राह्मणों की जागीर बने 'सिद्धांतीकरण' के संदर्भ में उजागर करने का प्रयास करते हैं. वे उन स्थितियों की व्याख्या करते हैं जो 'सैद्धांतिक ब्राह्मणों' और 'अनुभवसिद्ध शूद्र' की द्वैत का निर्माण करती है. वह मानते हैं कि ये असमानताएं समाज विज्ञान, जहाँ पुराने विचारों को दोहराते रहने वाले द्विज ब्राह्मणों का आधिपत्य है, की निराशाजनक स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं.

सीपीए प्रोजेक्ट का ज्ञान सृजन सिद्धांत बहुजनों की आवाज को केन्द्रित कर अनुभवात्मक शोध विषय और मेधावी शोधकर्ता/ज्ञान उत्पादकों के द्वैत को तोड़ना चाहता है. इस आलोक में, हमने बहुजन सदस्यों की मदद करने जैसे कदम उठाए हैं जिससे कि वे सीपीए प्रोजेक्ट की रिसर्च रिपोर्ट तैयार करने में अग्रणी भूमिका निभा सकें. उन्हें मुख्य लेखकों के रूप में भी श्रेय दिया जा रहा है. ये कदम उत्पीड़ित जाति समुदायों, जिन्हें ज्ञानसर्जक की जगह महज 'डेटा पॉइंट' के रूप में बदल दिया गया है, की आवाज़ों को केंद्रीय महत्व प्रदान कर ज्ञान सृजन के जाति-विरोधी तरीके तैयार करने और इसे ब्राह्मणवाद से मुक्त करने के लिए उठाए गए हैं. इसलिए, ज्ञान सृजन के सभी रूपों अर्थात् लेख, वीडियो, कॉमिक्स आदि तैयार करने का श्रेय इस प्रक्रिया में योगदान देने वाले सभी सदस्यों (पूर्णकालिक, स्वैच्छिक, इंटर्न और अन्य सहयोगियों) को दिया गया है.

मुख्य रूप से दलितों, अनुसूचित जनजातियों, पसमांदा मुस्लिम और अन्य पिछड़ी जातियों (प्रमुख और गैर-प्रमुख जातियों सहित) सहित उत्पीड़ित जाति समुदायों के शोधकर्ताओं का समूह है जिसमें उत्पीड़क जाति के दो शोधकर्ता भी शामिल हैं. जाति-विरोधी शोध करने की कोशिश करते हुए, हमने भारत में अपराधीकरण की ब्राह्मणवादी प्रकृति को उजागर करने के लिए जाति-विरोधी अध्ययन और देशज एवं अनुसूचित जनजातियों के विद्वता से प्राप्त ज्ञान और अनुसंधानों की श्रृंखला से मार्गदर्शन प्राप्त किया है. बहुजन बौद्धिक के निर्माण और इसे प्रमुखता प्रदान करने के अलावा, हमारे शोध का महत्वपूर्ण उद्देश्य भारतीय अकादमिक जगत के प्रभुत्वशाली 'सामान्य श्रेणी' (उत्पीड़क या तथाकथित उच्च जाति) शोधकर्ताओं की जातिविहीनता को रेखांकित करना है. बहुजन बौद्धिक गढ़ने में, हमने उत्पीड़ित जाति/वंचित समूहों की आवाजों की विविधता को संज्ञान में रखा है. हम ज्ञान उत्पादन की परियोजना को उत्पीड़ितों की एकजुटता के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं. साथ ही यह परियोजना सोपानिक असमानता की व्यवस्था और विकसित होती जाति व्यवस्था से उभरती जटिल सत्ता संरचना से संबंध स्थापित करती है. लिंडा तुहावेई स्मिथ ने अपनी पुस्तक डीकोलोनाइजिंग रिसर्च में 'रिसर्चिंग बैक' के विचार की जटिलताओं से जूझते हुए कुछ ऐसा किया कि 'रिसर्च में भीतर-बाहर' शोध के स्वरूप की पुनर्कल्पना बन गई यानी किसी शोध को किन सवालों से जूझना चाहिए, इसमें क्या शामिल होना चाहिए, इसे कैसे अंजाम दिया जाना चाहिए,

इत्यादि. इस प्रकार, यह दमनकारी सत्ता संरचना, जो शोध की विशेषता बन गया है, को चुनौती देने का प्रयास कर शोध का महत्वाकांक्षी दावा प्रस्तुत करता है. जाति पर काम करने वाले बहुजन शोधकर्ताओं के रूप में हमारी स्थिति भीतर से विद्वता विकसित करने की है. सहभागी एक्शन रिसर्च मॉडल की परिकल्पना भीतर से शोध दृष्टिकोण विकसित करने की प्रक्रिया का अहम अंग है, इस मॉडल में 'नॉन-एक्सट्रैक्टिव' एक्शन रिसर्च किया जाता है जिसमें यथास्थितिवाद को चुनौती देने की प्रक्रिया में हितधारकों के रूप में समुदाय के साथ काम करना शामिल है.

सीपीए प्रोजेक्ट मुख्य रूप से विमुक्त जनजातियों (डीएनटी) के साथ काम करता है, जिसमें अन्य के साथ-साथ घुमंतू, अर्ध- घुमंतू और स्थाई रूप से बस चुकी जनजातियाँ शामिल हैं, जिन्हें आपराधी जनजाति अधिनियम (सीटीए) में 'जन्म से अपराधी' कहा गया था. डीएनटी और एसटी समुदायों पर शोध के हिंसक इतिहास को देखते हुए और ब्राह्मणवादी व्यवस्था की इस हिंसा के इतिहास का सामना करने वाले शोधकर्ताओं के रूप में, हम सक्रिय (लेकिन विकसित होते) उपाय कर रहे हैं ताकि हिंसा की समान संरचनाएं फिर से मूर्त रूप न लें. डीएनटी और एसटी समुदायों के संरक्षक शोधकर्ताओं को शामिल करने का भी प्रयास किया गया. इस संदर्भ में हमारा वर्तमान शोध वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम (डब्ल्यूपीए), 1972 पर प्राथमिक रूप से ध्यान केन्द्रित करते हुए के वन्यजीव संबंधी पुलिस कार्यप्रणाली पर आधारित है.

II. वन्यजीव शोध: भीतर से परिप्रेक्ष्य का निर्माण

डब्ल्यूपीए के तहत वन आश्रित समुदायों के अपराधीकरण की पड़ताल संबंधी हमारे वर्तमान शोध की ज़रूरत वन्यजीव संबंधित पुलिस कार्यप्रणाली द्वारा वन और गैर-वन आश्रित समुदायों के नियमित अपराधीकरण से सामने आई है. इन समुदायों के सदस्यों का कानूनी रूप से प्रतिनिधित्व करने के सीपीए प्रोजेक्ट के अनुभव से यह सामने आया कि डीएनटी द्वारा पारंपरिक व्यवसायों के जरिए आजीविका जुटाने पर पुलिस इनके खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए डब्ल्यूपीए का व्यापक इस्तेमाल करती है. यह शोध डब्ल्यूपीए के तहत इस अपराधीकरण के तौर-तरीकों और पुलिस कार्यप्रणाली की बारीकियों को उजागर करता है. इसलिए, समुदाय के मुद्दों की वकालत करने वाले समूह के रूप में, हमारी बाहरी और भीतरी की अनूठी स्थिति बन जाती है. हितों के टकराव की कोई भी संभावित स्थिति का निपटारा आचार समिति द्वारा किया गया.

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, डीएनटी के साथ हमारे जुड़ाव के कारण इस शोध की शुरूआत हुई. लेकिन जैसे-जैसे शोध आगे बढ़ा, हमने पाया कि डीएनटी के अपराधीकरण का ऐतिहासिक संदर्भ वन आश्रित जनजातियों के अपराधीकरण से अलग है. इसलिए, हमने इन दो शोध कार्यों को अलग करने का निर्णय लिया और वन आश्रित समुदायों पर केंद्रित इस वर्तमान शोध के साथ आगे बढ़े.

इसके अलावा, जनजातियों की विविधता को संबोधित करने के लिए, हमने इस पूरी रिपोर्ट में जनजातियों और अनुसूचित जनजातियों जैसे विभिन्न शब्दों का इस्तेमाल किया है. इन शब्दों की व्युत्पत्ति भारत में विभिन्न संदर्भों में अलग-अलग है. आदिवासी शब्द (जिसका अर्थ है मूल निवासी) का उपयोग मुख्य रूप से भारत के मुख्य भू-भाग की जनजातियों की स्व-दावेदारी के रूप में उपयोग होता है. हालांकि विभिन्न सामाजिक आंदोलनों द्वारा एसटी शब्द का उपयोग किया जाता है, जो ब्राह्मणवादी राज्य द्वारा इन समुदायों को उनकी भूमि और उनके प्राकृतिक परिवेश से हिंसक तरीके से अलग कर देने के विशिष्ट सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ से उभरा शब्द है.

जबकि भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों के छठी अनुसूची के क्षेत्रों में रहने वाले समुदाय अपनी पहचान जनजातियों के रूप में प्रस्तुत करते हैं, वहीं जिन समुदायों के साथ हमने फील्डवर्क के दौरान बातचीत की, उनमें से कई सदस्यों ने खुद को अनुसूचित जनजातियों (संवैधानिक शब्दावली) के रूप में या अपने जनजाति के विशिष्ट नाम, उदाहरण के लिए बैगा या गोंड, से पहचाना जाना पसंद किया. गोंड समुदाय के एक वरिष्ठ नेता और पंचायत सदस्य एक साक्षात्कारकर्ता द्वारा आदिवासी शब्द का इस्तेमाल किए जाने पर नाराज हो गए. उन्होंने कहा कि उनके समुदाय को संवैधानिक रूप से एसटी के रूप में मान्यता प्राप्त है और इसलिए उन्हें उसी के रूप में संबोधित किया जाना चाहिए. यहां एसटी शब्द को एक संवैधानिक श्रेणी के माध्यम से संवैधानिक अधिकारों पर दावे के रूप में देखा जा सकता है. हमारा 'भीतर से परिप्रेक्ष्य' अपनी पड़ताल को जनजातियों की स्थिति तक सीमित नहीं करता है बल्कि जनजातियों के बीच मौजूद विभिन्न सत्ता संरचना की व्याख्या कर जनजातियों के भीतर मौजूद टकरावों के निपटारे का प्रयास करता है.

जैसा कि वर्जिनस खाखा तर्क प्रस्तुत करते हैं, "अपनी व्युत्पत्ति से इतर, आदिवासी शब्द का अर्थ है 'देशज' जिसकी उत्पत्ति इतिहास और संसाधनों से समुदायों के हिंसक बेदखली के खिलाफ प्रतिरोध के रूप में हुई है. स्व-दावेदारी पेश करने के लिए इन अलग-अलग शब्दों का इस्तेमाल भी हमारे लिए वन आश्रित समुदायों की विविधता को रेखांकित करने का एक तरीका है. यह विविधता तमाम जनजातियों में, लिंग/जेंडर आधारित विभाजन, ज्ञान पद्धतियों और विशेष रूप से विभिन्न वन आश्रित समुदायों के अपराधीकरण के असमान तरीकों और सत्ता के खिलाफ उनके प्रतिरोध एवं समझौतों में प्रकट होती है. उदाहरण के लिए, गोंड समुदाय अपनी राजनीतिक गोलबंदी सहित विभिन्न कारणों से बैगा समुदाय (जिसकी एक बड़ी आबादी उसी क्षेत्र में रहती है) की तुलना में वन विभाग के साथ अपने संबंधों को अधिक मुखरता से प्रदर्शित करता है."

यह विविधता उत्पीड़न के उन विशिष्ट स्वरूपों के बारे में भी बताती है जिनके द्वारा इन समुदायों को उनके जल, जंगल और ज़मीन एवं इससे जुड़े प्राकृतिक संसाधनों से वंचित किया गया. गैर-वन आश्रित समुदायों के शोधकर्ताओं के रूप में, हमें वन आश्रित समुदायों के ज्ञान की पारंपरिक प्रणालियों के विलोपन और समायोजन से परिचित होने की भी आवश्यकता थी. इसलिए, टीम के शोधकर्ताओं को गहन रिसर्च वर्कशॉप के जरिए प्रशिक्षित किया गया, जिसमें इन समुदायों के साथ शोध की ऐतिहासिकता और सत्ता संरचना पर महत्वपूर्ण रूप से चर्चा की गई.

III. सुरक्षा और जवाबदेही संबंधी उपाय

शोधकर्ताओं के कार्यों की जाँच और निगरानी की एक प्रणाली सुनिश्चित करने के आदिवासी, अनुसूचित जनजाति और बहुजन समुदायों के विद्वानों को लेकर एक आचार समिति बनाई. यह समिति शोध का प्रारूप तैयार करने से लेकर जोखिम-मूल्यांकन तक, रिपोर्ट के सभी चरणों की समीक्षा प्रक्रिया में शामिल रही ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वन आश्रित समुदायों को होने वाले नुकसान के रोकथाम के लिए उपाय किए जाएं.

विशेष रूप से क्षेत्र में उच्च-जाति के शोधकर्ताओं की जिम्मेदारी सुनिश्चित करने के उपाय किए गए हैं. इन शोधकर्ताओं को अपनी जाति के बारे में पूरी तरह बताना था. साथ ही वितरणात्मक न्याय सिद्धांत के

अनुरुप, रिपोर्ट लेखन में उन्हें स्थान देने और हमारी ज्ञान सृजन नीति के अनुरूप संपूर्ण शोध अवधि के दौरान जवाबदेही तय करने के उपाय किए गए.
वन आश्रित समुदायों और राज्य के अधिकारियों के साथ बातचीत करने वाले शोधकर्ताओं के अलग-अलग समूह बनाने में सुरक्षा उपायों को अपनाया गया ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि पहले से ही जोखिम का सामना करने वाले समुदायों को किसी भी तरह से नुकसान न हो या यह स्थिति और न बिगड़े. इस कार्य में फील्ड में बातचीत की प्रक्रिया को जीवंत बनाने के लिए स्थानीय रीति-रिवाजों और परंपराओं से अवगत होने के मामलों में सामुदायिक मध्यस्थों के मार्गदर्शन का अनुशरण किया गया. हमने यह सुनिश्चित करने के प्रयास किए हैं कि राज्य के अधिकारियों के साथ बातचीत सीपीए परियोजना के शोधकर्ता करें. पहले आरोपी व्यक्तियों के साथ बातचीत की गई और फिर अधिकारियों का साक्षात्कार किया गया ताकि हमारे साक्षात्कारकर्ताओं और मध्यस्थों के खिलाफ किसी भी तरह के अनहोनी को रोका जा सके.

IV. वापस लौटाना

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वन आश्रित और अपराधीकरण के शिकार अन्य समुदायों के साथ काम करने वाले वकीलों के रूप में, हमारा मकसद इस शोध के जरिए पुलिस कार्यप्रणाली और डब्ल्यूपीए के तहत इन समुदायों के अपराधीकरण को उजागर करना था. इस प्रकार, इस शोध के निष्कर्ष अपराधीकरण के शिकार समुदायों की यथास्थिति को चुनौती देने के प्रयासों को गति प्रदान करते हैं. शोध संबंधी आंकड़ों के संग्रह और इसे तैयार करने के बाद, इसके निष्कर्षों को साझा करने और लोगों के साथ भविष्य के कार्यों पर चर्चा करने के लिए हमारे शोध के फील्ड एरिया में बातचीत की एक श्रृंखला आयोजित की गई. हम इस प्रक्रिया को जारी रखने का इरादा रखते हैं क्योंकि प्रकाशित शोध अध्ययन हमारे मुद्दों की वकालत करने का साधन है. तुहिवई स्मिथ इस प्रक्रिया को 'वापस लौटाना' और 'ज्ञान साझा करना' बताती हैं जिसे शोधकर्ताओं को अवश्य ही शोध प्रक्रिया के एक अंग के रूप में महत्व देना चाहिए, इस प्रकार वे समग्र रूप से शोध के अर्थ को विस्तार देने की वकालत करती हैं. स्मिथ जिसे वापस लौटाने की प्रक्रिया के रूप में देखती हैं, उसे शायद शोध के माध्यम से सत्ता और संसाधनों के पुनर्वितरण की प्रक्रिया के रूप में भी देखा जा सकता है, जो कि जाति उन्मूलन की परियोजना का मौलिक तत्व है.

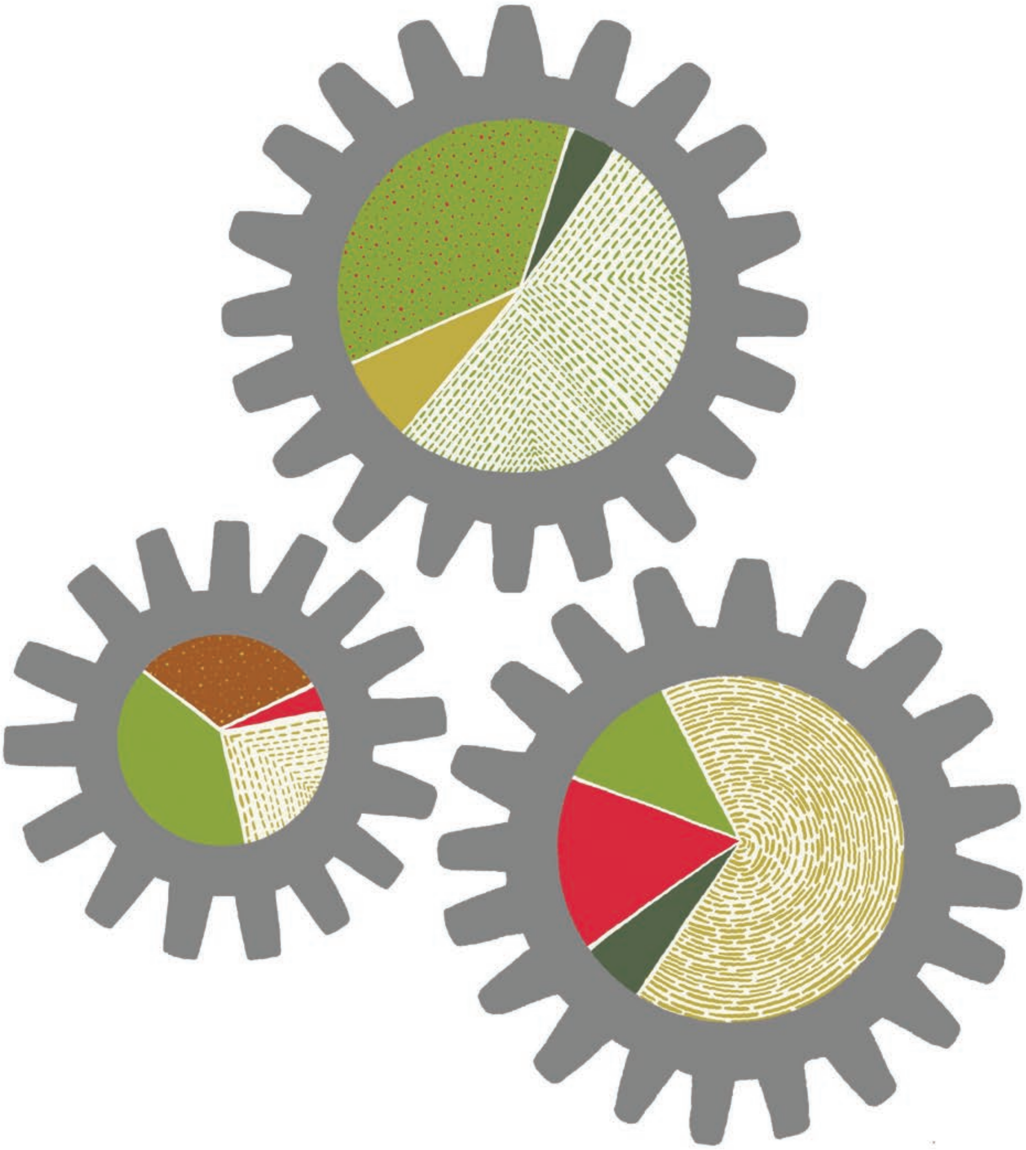

3. कार्य पद्धति

आंकड़ा संग्रह एवं विश्लेषण

मुख्य रूप से अनुसंधान की प्रकृति और शोध के उद्देश्यों के आधार पर गुणात्मक और मात्रात्मक पद्धति - दोनों का इस्तेमाल किया गया.

यह शोध वन विभाग द्वारा समुदायों को डब्ल्यूपीए के जरिए असंगत रूप से निशाना बनाए जाने के विस्तार और प्रकृति को समझने का प्रयास करता है और गुणात्मक विधियों के चुनने योग्य विकल्प के जरिए कुछ समुदायों पर अपराधीकरण के प्रभाव को भी समझने की कोशिश करता है. यह डब्ल्यूपीए के तहत 'अपराधी' की श्रेणी और इसके जातिवादी आधारों की अवधारणा पर भी सवाल उठाता है और इसे चुनौती देता है. अपराधीकरण के विस्तार को समझने के लिए, पुलिस और वन विभाग के मात्रात्मक आंकड़ों के विभिन्न डेटा सेट्स का विश्लेषण करना महत्वपूर्ण है, जिनमें एफआईआर, गिरफ्तारी संबंधी आंकड़े और वन अपराध के केस रजिस्टर शामिल हैं. ये आंकड़े शिकार किए गए जानवरों, गिरफ्तारियों की संख्या, अपराधी ठहराए गए/निशाना बनाए गए जातियों/समुदायों आदि से संबंधित प्रचलित तरीकों को दर्शाते हैं. हालाँकि, ये आंकड़े अन्य के मुकाबले कुछ खास समुदायों के अपराधीकरण के संदर्भ को समझने के लिए पर्याप्त है.

इस शोध के संदर्भ में, गुणात्मक आंकड़ों के उपयोग के बिना मात्रात्मक आंकड़ों का इस्तेमाल कुछ हद तक सीमित है, क्योंकि यह विशिष्ट जानवरों के शिकार, गिरफ्तारी सम्बन्धी अनियमितताओं, हिरासत में हिंसा, वन विभाग द्वारा अपराध के अनुसंधान और ऐसे अन्य कारकों से संबंधित प्रश्नों का उत्तर नहीं देता है. ऐसे में अपराधीकरण के स्वरुप को गुणात्मक तरीकों के उपयोग से अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है, जिनमें किसी विशिष्ट जानवर के शिकार, गिरफ्तारी संबंधी अनियमितताओं, हिरासत में हिंसा के कारणों और वन विभाग द्वारा किसी 'अपराध' के अनुसंधान के तरीकों का पता लगाना शामिल हैं.

I. पुलिस की कार्यप्रणाली के स्वरूप को उजागर करने के लिए मात्रात्मक आंकड़ों का उपयोग

कैरी मेन्केल मीडो अपने लेख "यूजेज एंड एब्यूजेज ऑफ सोशल लीगल स्टडीज" में बताती हैं कि मात्रात्मक आंकड़ों के आधार पर किए गए विश्लेषण सीधे तौर पर सिद्धांतों, अवधारणाओं, परीक्षण योग्य परिकल्पनाओं और ठोस अनुभवजन्य निष्कर्षों के निर्माण में योगदान देते हैं. इसके अलावा, कानूनी घटनाओं के सांख्यिकीय माप कानून और इसकी संस्थाओं की वास्तविकता कार्यप्रणाली के दस्तावेजीकरण में मदद कर सकते हैं.

समाज द्वारा अक्सर अस्वीकार किए जाने वाले छिपे हुए पूर्वाग्रहों को आंकड़ों के आधार पर तैयार अनुसंधान द्वारा प्रकाश में लाया जाता है. उदाहरण के लिए, कई वैज्ञानिकों का साझा कार्य मानव तर्क संबंधी संज्ञानात्मक त्रुटियों के बारे में बताता है, जो दर्शाता है कि कैसे संज्ञानात्मक त्रुटियां कानूनी घटनाओं पर परस्पर प्रभाव डालती हैं, न्यायाधीशों, वकीलों, पुलिस और अन्य निर्णयकर्ताओं के बीच मौजूद नस्लीय और लैंगिक/जेंडर आधारित पूर्वाग्रहों पर ध्यान देते हुए सभी कानूनी विचार, व्यवहार और निर्णय-प्रक्रिया में अंतर्निहित पूर्वाग्रहों की पड़ताल करती हैं. आपराधिक न्याय प्रणाली की दक्षता का आकलन करने के लिए राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो जैसी रिपोर्टों के आंतरिक संकेतकों के उपयोग के अलावा, पुलिस कार्यप्रणाली का अन्य किसी प्रकार का अध्ययन नहीं हुआ है.

जबकि ऐसी रिपोर्ट्स सांख्यिकीय आंकड़ों के माध्यम से तंत्र की 'कार्यप्रणाली' को दर्ज करती हैं, दैनिक कामकाज के दौरान अधिकारियों द्वारा उपयोग की जाने वाली विवेकाधीन शक्ति के उपयोग पर बहुत थोड़ा

ध्यान दिया जाता है. हमारे आंकड़े पुलिस द्वारा दर्ज जानकारी के भीतर पुलिस कार्यप्रणाली के स्वरुप को उजागर करने के लिए सार्वजनिक स्रोतों का पर्यवेक्षण करते हैं और पुलिस कार्यप्रणाली को देखने के नजरिए को उलट देते हैं. नियमित रूप से पुलिस के निशाने पर रहने वाले लोगों पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय, हमारा अध्ययन उस तंत्र की पड़ताल करता है जो ताकत के अनियंत्रित उपयोग की अनुमति देता है. हमारा यह अध्ययन पुलिस विभाग के गिरफ्तारी संबंधी रिकॉर्ड (2010 से 2020 तक) और प्रथम सूचना रिपोर्ट (2016 से 2020 तक) और मध्य प्रदेश के वन विभाग द्वारा संकलित वन अपराध केस रजिस्टर (2016 से 2020) पर आधारित है. इसके अतिरिक्त जिलेवार/अंचल-वार विश्लेषण और पुलिस द्वारा अपराध को चिन्हित करने में दर्ज विवरणों के माध्यम से अन्य स्वरूपों की पहचान की गई है.

II. मात्रात्मक शोध निष्कर्षों की सीमाएं

आंकड़ा आधारित नीतियां या अलग-अलग साक्ष्य आवश्यक रूप से दैनिक जीवन की परिस्थितियों में शामिल नहीं होते हैं. वे विस्तार, स्थिति, कैसे और कहाँ आंकड़े तैयार किए जाते हैं - इसके संदर्भों, आंकड़ों की व्याख्या, इसके उपयोग और इसे सार्थक बनाए जाने पर ध्यान नहीं देते हैं. इस प्रकार, उनके पास वह स्थापित नैतिकता नहीं होती है जो परिस्थितियों और कार्यों को समझने की कोशिश करती है क्योंकि वे ज्ञान और निर्णय लेने के लिए संख्यात्मक आंकड़ों पर बहुत निर्भर होते हैं. इस परिप्रेक्ष्य में राजनीति के बारे में अपूर्ण माप और संदेह की व्यावहारिक स्वीकृति शामिल है. यह मान जाता है कि सभी चीजों को मापा जा सकता है और वे उपाय निर्णय लेने के लिए आदर्श मार्गदर्शन प्रदान करते हैं. ऐसे में, निर्णय लेने के लिए दिशानिर्देशों, मानकों, मैट्रिक्स और प्रदर्शन मूल्यांकन द्वारा जुटाए साक्ष्य का उपयोग आवश्यक है.

ऐतिहासिक मात्रात्मक आंकड़ों की बाधाओं को कम करने के लिए, हमने विभिन्न गुणात्मक तरीकों का इस्तेमाल किया. इसके लिए हमने अपने शोध प्रश्नों को तैयार किया और अन्य लोगों, जिन्होंने समान कार्य किया है, के साथ उनका परीक्षण किया और स्थानीय संदर्भों के अनुकूल हमारे निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए कानूनी प्रणाली के भीतर कई हितधारकों का साक्षात्कार लिया है. हमारे निष्कर्ष और सिफारिशें स्थानीय संदर्भों और मात्रात्मक आंकड़ों - दोनों के आधार पर तैयार की गई हैं.

इसके अलावा, हमने मध्य प्रदेश पुलिस और वन विभाग की वेबसाइट्स से आंकड़े प्राप्त किए हैं. जबकि वेबसाइट्स को नियमित रूप से अद्यतन रखा जाना चाहिए, अलग-अलग पुलिस स्टेशन या फारेस्ट सर्कल द्वारा इसके अनुपालन में भिन्नता होती है. इसलिए, हमारा डेटा उस जानकारी तक सीमित है जिसे हम विश्लेषित करने में सक्षम थे. हम इस अंतर को सबसे अधिक एफआईआर रद्द करने के मामलों में देखते हैं, जहां डब्ल्यूपीए के तहत दर्ज मामलों में पुलिस द्वारा बड़ी संख्या में गिरफ्तारी किए जाने के बावजूद, बहुत कम एफआईआर पाए गए. शिकार के अपराधीकरण के प्रश्न पर हमारे प्रारंभिक शोध के बावजूद, हमने पाया कि अधिकांश प्राथमिकी बालू खनन के अपराध से संबंधित हैं, जिन्हें हमने इस अध्ययन के दायरे से बाहर रखा है. यह देखा गया कि प्राथमिक तौर पर वन विभाग शिकार के अपराधों पर मुकदमा चलाता है, भले ही शिकार संरक्षित क्षेत्र या सामान्य वन क्षेत्रों में किए गए थे.

अ. व्यक्तियों की सामाजिक पृष्ठभूमि के मानचित्रण की प्रक्रिया और चुनौतियाँ एवं इन तरीकों के चयन का कारण

हमारे अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य मध्य प्रदेश (एमपी) पुलिस विभाग के गिरफ्तारी संबंधी आंकड़ों और प्रथम

सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) के साथ-साथ वन विभाग द्वारा संकलित वन अपराध केस रजिस्टर के जरिए डब्ल्यूपीए के तहत गिरफ्तार और आरोपित व्यक्तियों के जाति का निर्धारण करना है, जिसके लिए पुलिस और वन विभाग द्वारा व्यक्तियों का पूरे नाम दर्ज करने की आवश्यकता होती है. वन विभाग ने वन्यजीवों संबंधी कई मामलों के अपने आंकड़ों में आरोपी व्यक्तियों की जाति भी दर्ज की है. विभाग अभियुक्त व्यक्ति के विवरण को निम्नलिखित तरीके से दर्ज करता है: पूरा नाम, गांव का नाम, जाति का नाम. हमने वन विभाग के रिकॉर्ड में सूचीबद्ध उपनाम, क्षेत्र और व्यक्तियों के जाति का विश्लेषण किया. वहीं दूसरी ओर पुलिस विभाग ने वन्य जीव अपराधों में आरोपित व्यक्तियों के नाम और पते ही दर्ज किए हैं.

उपनाम और क्षेत्र-विशिष्ट उपनाम भारतीय समाज में किसी के जाति के बारे में बहुत विस्तार से बताते हैं. पत्रकार जया रानी का तर्क है कि उपनाम 'मौखिक जाति प्रमाण पत्र' हैं. उत्पीड़क जाति समूहों द्वारा उपनामों को श्रेष्ठता के आभासी तमगे के रूप में पहना जाता है और वे उत्पीड़ित जातियों के व्यक्तियों के लिए हीनता का एहसास कराने वाले तात्कालिक साधन हैं. उन्होंने जाति-विरोधी सुधारवादी आंदोलनों में भी प्रमुखता से भाग लिया है. उदाहरण के लिए, जाति विरोधी नेता पेरियार ईवी रामासामी ने 1929 में चेंगलपेट में पहले तमिल प्रांतीय आत्म सम्मान सम्मेलन में अपना उपनाम हटा दिया. उन्होंने तर्क दिया कि जातिवादी उपनामों का उन्मूलन जाति व्यवस्था को कमजोर करने के लिए महत्वपूर्ण है. इसी तरह, कई दलितों ने क्रूरतापूर्ण दमनकारी जाति व्यवस्था के खिलाफ आत्म-विश्वास पैदा करने के लिए 'गौतम' उपनाम को अपनाया है.

हालांकि, राज्य की नीतियों और स्वयं जाति व्यवस्था के बहुत ज्यादा-स्थानीयकृत अंतर्संबंधों के कारण, किसी व्यक्ति के उपनाम से उसके जाति का पता लगाना चुनौतियों से भरा हुआ होता है. इस प्रयास में सबसे बड़ी पद्धतिगत चुनौती भारत सरकार के जातिगत जनगणना के आंकड़ों के अभाव में जातियों का पृथक्करण करना है. जातिगत जनगणना का अर्थ है हर दशक में होने वाली जनगणना में भारत की जनसंख्या के जातिवार सारणीकरण को शामिल करना, जो अब तक केवल अनुसूचित जाति (एससी) और अनुसूचित जनजाति (एसटी) समुदायों के लिए किया गया है. जनगणना में अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) की गणना नहीं किए जाने से, उत्पीड़न के अलग-अलग इतिहास वाले 5,000 से अधिक जाति समूहों का वर्ग, आपराधिक न्याय प्रणाली में अपने निरूपण को रेखांकित करने में असमर्थ है.

सबसे पहले, 'सामान्य, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग' की प्रशासनिक श्रेणियां विमुक्त जनजातियों (डीएनटी) जैसे समुदायों को पूरी तरह से अदृश्य और समाहित कर देती हैं, जिनका विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास है और जिनके पास जाति उत्पीड़न के विशिष्ट अनुभव हैं और जो खानाबदोश या अर्द्ध खानाबदोश के रूप में जाति व्यवस्था से पूरी तरह से बाहर हैं. नतीजतन, कुछ डीएनटी समुदायों को राज्य द्वारा (कागज पर) सामान्य श्रेणी से संबंधित माना जाता है, अन्य को अनुसूचित जाति और शेष को अनुसूचित जनजाति माना जाता है. केंद्र सरकार द्वारा स्थापित रेंके आयोग और इडाते आयोग को पूरे भारत में खानाबदोश, अर्ध-खानाबदोश और डीएनटी समुदायों की पहचान करने का कार्य सौंपा गया था. हालाँकि, इन आयोगों की सिफारिशों और निष्कर्षों को अभी तक औपचारिक रूप से लागू नहीं किया गया है ताकि इन समुदायों को राज्य श्रेणियों में अलग समूह के रूप में मान्यता दी जा सके. गैर-हिंदू जाति समूहों से संबंधित उत्पीड़ित जाति समुदायों के मामले में उपनामों के आधार पर जाति का पता लगाने की एक और चुनौती सामने आती है. दलित ईसाइयों और दलित मुसलमानों की मांगों के बावजूद, हिंदू धर्म में उत्पीड़ित जाति समुदायों के गलत प्रशासनिक वर्गीकरण ने इन समुदायों को एससी और एसटी श्रेणियों

से बाहर कर दिया है. जाति जनगणना के आंकड़ों के अभाव में ओबीसी वर्गीकरण के वर्तमान स्वरुप के कारण इन समुदायों को ओबीसी श्रेणी में शामिल करने में भी बाधा है. इसलिए, राज्य द्वारा हिंदू धर्म से परे जाति को मान्यता नहीं दिए जाने के कारण, हमारा (और ऐसा कोई भी) अध्ययन गैर-हिंदू समूहों के बीच जाति का पता लगाने में असमर्थ है.

दूसरा, इन राज्य श्रेणियों में समुदायों का वर्गीकरण अपने आप में अशुद्धियों और विवादों से भरा हुआ है. उदाहरण के लिए, प्रभुत्वशाली जाति समुदायों ने राज्य के सकारात्मक कार्यों और शिक्षा एवं रोजगार में आरक्षण नीति से लाभान्वित होने के लिए स्वयं को ओबीसी, एससी या एसटी की सूची में शामिल किए जाने के लिए अपनी राजनीतिक ताकत का इस्तेमाल किया है. आंध्र प्रदेश के कापू और महाराष्ट्र के मराठा हाल के दिनों में ऐसी मांग (और यहां तक कि कभी-कभी सफल भी) करने वाले समुदायों के प्रमुख उदाहरण हैं. दूसरी ओर, कुछ एसटी और दलित समुदाय पूरी तरह से जाति व्यवस्था का उत्पीड़न झेलने के बावजूद खुद को सामान्य या ओबीसी के रूप में वर्गीकृत पाते हैं.

तीसरा, स्थानीय पेचीदगियों के कारण, उपनामों और जाति के बीच का संबंध एक राज्य से दूसरे राज्य या एक जिले से दूसरे जिले में भिन्न होता है. यहां, यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि कई हाशिए वाले समुदाय दूसरे राज्यों में भी प्रवास करते हैं यानी उन्हें एक राज्य की आधिकारिक श्रेणियों में विशिष्ट सीमांत समुदाय से संबंधित माना जा सकता है, लेकिन दूसरे राज्य की श्रेणियों में उन्हें प्रवासी या गैर-स्थानीय मान कर बिल्कुल भी जगह नहीं मिल सकती है. हालाँकि जाति हर जगह एक व्यक्ति के पहचान के साथ जुड़ा रहता है और जाति प्रमाण पत्र भी हर राज्य में मान्य होता है. हालाँकि, राज्य सूचियों में आधिकारिक गणना नहीं दी गई है.

चौथा, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदायों की राज्य सूची व्यापक हो सकती है, लेकिन संपूर्ण नहीं है.

पांचवां, कुछ उपनाम (जैसे ठाकुर, राठौड़ और कुमार) अस्पष्ट हैं. उत्पीड़क और उत्पीड़ित जाति समूहों - दोनों द्वारा ये उपनाम रखे जाते हैं. ऐसे में पुलिस विभाग की एफआईआर के अध्ययन, जो अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं कराते हैं, से यह पता लगाना मुश्किल है कि इस तरह के उपनाम वाला व्यक्ति उत्पीड़क जाति समूह का है या उत्पीड़ित जाति समूह का. इससे भी इंकार नहीं किया जाना चाहिए कि हाशिए पर रहने वाले समुदाय के कुछ सदस्य आमतौर पर उच्च जाति समूहों से जुड़े उपनाम को अपनाते हैं जिससे कि वे उच्च जाति के रूप में जाने जाएं और कम-से-कम उत्पीड़ित जाति के कलंक से बच सकें.

छठा, राज्य केवल अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित समूहों की सूची रखता है. सामान्य श्रेणी से संबंधित समुदायों की कोई राज्य सूची नहीं है. जैसा कि देशपांडे तर्क देते हैं, सामान्य श्रेणी में जातियों, जिसमें मुख्य रूप से उत्पीड़क जातियां शामिल हैं, की गणना का अभाव इस बात का भी प्रमाण है कि कैसे राज्य श्रेणियों का उपयोग सामान्य श्रेणी की 'जातिहीनता' को मजबूत करने के लिए किया जाता है.

इन चुनौतियों के बावजूद, हमने निम्नलिखित दस्तावेजों के माध्यम से अध्ययन किया:
1. केंद्रीय और मध्य प्रदेश राज्य की एससी और एसटी सूची

2. केंद्रीय और मध्य प्रदेश राज्य की ओबीसी सूची
3. इडाते और रेंके आयोग की सूची
4. मध्य प्रदेश के विभिन्न जिलों के भूमि रिकॉर्ड संबंधी दस्तावेज
5. राष्ट्रीय छात्रवृत्ति और फेलोशिप संबंधी मध्य प्रदेश की मेरिट लिस्ट (उदाहरण के लिए राष्ट्रीय प्रतिभा खोज परीक्षा)
6. एमपी स्कॉलरशिप पोर्टल्स एवं प्रतियोगी परीक्षाओं की मेरिट लिस्ट
7. हाशिए के विमुक्त समुदाय के सदस्यों का उनके जातिगत उत्पीड़न और विशिष्ट अपराधीकरण संबंधी मौखिक इतिहास

हमने निम्नलिखित समूहों से संबंधित उपनामों को वर्गीकृत किया है - 'सामान्य', 'एससी', एसटी', 'ओबीसी', 'डीएनटी', 'संभवतः सामान्य श्रेणी', 'संभवतः सीमांत श्रेणी', 'अवर्गीकृत' और 'शून्य' (0). पुलिस विभाग के आंकड़ों में दर्ज उपनामों को हमने उपरोक्त सात वर्गों में वर्गीकृत किया है. हालाँकि, वन विभाग के आंकड़ों के लिए, हमने जातियों की सूची की मदद से उपर्युक्त समूहों से संबंधित उपनामों को वर्गीकृत किया. उदाहरण के लिए, 'आदिवासी' और 'गोंड' शब्द (दोनों एसटी की प्रशासनिक श्रेणी को इंगित करने के लिए उपयोग किए जाते हैं) का प्रयोग अक्सर अभियुक्तों की जाति दर्शाने के लिए किया जाता है.

'सामान्य' ऐसे उपनामों को इंगित करता है जो उत्पीड़क या तथाकथित ऊंची जातियों के हैं. 'एससी' में दलित समुदायों के नाम शामिल हैं. 'एसटी' में एसटी समुदायों के नाम शामिल हैं. 'अन्य पिछड़ा वर्ग' आधिकारिक राज्य दस्तावेजों में उपलब्ध सूची से लिया गया है. डीएनटी समुदायों में सभी विमुक्त, खानाबदोश और अर्ध-खानाबदोश समुदाय शामिल हैं और मुख्य रूप से मौखिक इतिहास और इडाते और रेंके आयोगों के वर्गीकरण से प्राप्त हुए हैं. 'संभवतः सामान्य श्रेणी' में ऐसे सभी उपनाम शामिल हैं जो उत्पीड़क जातियों और उत्पीड़ित जातियों दोनों द्वारा उपयोग किए जाते हैं. उदाहरण के लिए, मध्य प्रदेश में 'आर्य' और 'ठाकुर' उपनामों का उपयोग उत्पीड़क जाति और अनुसूचित जनजाति, दोनों समुदायों द्वारा किया जाता है. इसलिए, 'संभवतः सामान्य श्रेणी' का हमारा वर्गीकरण हाशिए पर रहने वाले व्यक्तियों की कम गणना की गलती के कारण सामने आया है. 'संभवतः सीमांत श्रेणी' में वे सभी उपनाम शामिल हैं जिनका उपयोग हाशिए के विभिन्न समूहों द्वारा किया जाता है, न कि किसी उत्पीड़क जाति द्वारा. उदाहरण के लिए, 'शाह' और 'सोनकर' ऐसे उपनाम हैं जो एससी, एसटी और ओबीसी समुदायों द्वारा उपयोग किए जाते हैं. इसलिए, 'संभवतः सीमांत श्रेणी' के रूप में वर्गीकृत उपनामों के लिए हम यह बतलाने में असमर्थ रहे हैं कि ये उपनाम किस विशिष्ट सीमांत समूह से संबंधित है, लेकिन यह इंगित करने के लिए पर्याप्त सबूत हैं कि इस उपनाम का इस्तेमाल कम-से-कम हाशिए के दो समुदायों द्वारा किया जाता है. 'अवर्गीकृत' में ऐसे उपनाम शामिल हैं जिनकी जाति हम काफी व्यापक खोज के बावजूद निर्धारित करने में असमर्थ रहे. 'जीरो' में गिरफ्तारी के ऐसे रिकॉर्ड और एफआईआर शामिल हैं जिनमें कोई उपनाम दर्ज नहीं था.

हम यह दावा नहीं करते हैं कि हमारी पद्धति दोष रहित है, विशेष रूप से समुदायों को पर्याप्त और समान रूप से पहचानने या उनकी गणना करने में राज्य की विफलता और जाति व्यवस्था की स्थानीय पेचीदगियों को देखते हुए ऐसा दावा नहीं किया जा सकता. हालांकि, हमारा दावा है कि केवल उपनाम से जाति निर्धारित करने की स्थिति में हमारा वर्गीकरण किसी के जाति के संबंध में यथोचित संकेत देते हैं.

यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि मध्य प्रदेश की 2011 की राज्य जनगणना में केवल अनुसूचित

जाति और अनुसूचित जनजाति की जिलेवार आबादी के आंकड़े शामिल हैं. मध्य प्रदेश के जिलों में ओबीसी समुदायों की जनसंख्या की गणना की गई है, लेकिन इसे सार्वजनिक नहीं किया गया है. किसी भी राज्य की जनगणना में डीएनटी आबादी की गणना नहीं की जाती है. इसलिए, हम केवल विशिष्ट जिले की एससी और एसटी आबादी के समग्र अनुपात में गिरफ्तार किए गए या आरोपित व्यक्तियों के अनुपात को संदर्भित करने में सक्षम हुए हैं. अन्य समुदायों यानी सामान्य वर्ग, ओबीसी और विमुक्त समुदायों के अधिक प्रतिनिधित्व संबंधी हमारे निष्कर्ष राज्य की कुल आबादी में इन समुदायों के राज्यवार अनुपात की तुलना में आधारित हैं.

III. अपराधीकरण की प्रकृति को समझने के लिए गुणात्मक आंकड़ों का उपयोग:

जैसा कि अनुसंधान के उद्देश्यों में कहा गया है, अध्ययन मंडला और बालाघाट के आदिवासी और अन्य पारंपरिक वन आश्रित समुदायों के जीवन और आजीविका पर अपराधीकरण के प्रभाव की पड़ताल भी करता है.

हमने डब्ल्यूपीए प्रणाली से संबंधित चार हितधारकों का साक्षात्कार किया:
1. अभियुक्त व्यक्ति और उनके परिवार
2. अभियुक्त के वकील
3. वन विभाग के अधिकारी (बीट/रेंज ऑफिसर्स से लेकर डीएफओ तक)
4. पुलिस अधिकारी जो शिकार के मामलों से संबंधित मुकदमों में भी शामिल हैं.

यह अध्ययन मध्य प्रदेश के इन दो जिलों में कई इलाकों का भ्रमण कर किया गया:
1. मंडला (पुलिस और वन विभाग के आंकड़ों में गिरफ्तारियों की उच्च संख्या)
2. बालाघाट (सबसे ज्यादा गिरफ्तारियां, राष्ट्रीय उद्यानों से सटा जिला)

शिकार संबधी अपराध के क्रमवार घटनाओं - पशु अंगों की बरामदगी, अपराध दर्ज होने से लेकर इससे संबंधित न्यायिक फैसले तक - को दर्ज करने हेतु अर्ध-संरचित साक्षात्कार के लिए निम्नलिखित हितधारक-विशिष्ट प्रश्नावली का उपयोग किया गया. हम वन विभाग (और पुलिस) के वनों पर नियंत्रण के इतिहास को देखते हुए, इन दोनों के द्वारा असमान संबंध के कारण उत्पीड़ित समुदायों को निशाना बनाए जाने के प्रभाव का पता लगाना चाहते हैं. व्यक्तियों की गरिमा को बनाए रखते हुए हमसे साझा किए गए विवरणों को दर्ज करने के लिए, हमने संरक्षण के नाम पर पुलिस कार्यप्रणाली की ज्यादतियों के कारण हुए बड़े पैमाने पर बेदखली को उजागर करने के लिए मामूली तथ्यात्मक विसंगतियों को दूर किया है.

सभी हितधारकों से संबंधित प्रश्नावली हम संलग्नक के रूप में उपलब्ध करा रहे हैं. इस प्रश्नावली और इसके प्रारूपों की आचार समिति द्वारा गहन समीक्षा की गई है, रिसर्च वर्कशॉप के दौरान इस पर चर्चा हुई और विषय से संबंधित अलग-अलग अंतर्दृष्टि वाले रिसोर्स पर्सन के इनपुट के आधार पर इसे तैयार किया गया.

अपराधीकरण की प्रकृति और इसके बहुआयामी प्रभाव - दोनों का अध्ययन करने के लिए, कई हितधारकों के साथ बात-चीत करना और अपराधीकरण के विभिन्न पहलुओं की गहन पड़ताल करना जरूरी है.

जेन रिची और अन्य, गुणात्मक अनुसंधान पद्धति संबंधी अपनी पुस्तक में इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि कार्य पद्धति का चयन विषय की जटिलता और संवेदनशील प्रकृति पर निर्भर करता है. अपराधीकरण की प्रकृति जटिल है क्योंकि इसमें विभिन्न वन कानूनों और वन आश्रित लोगों के बीच के पारस्परिक प्रभाव को समझना और कानून के जीवन का पता लगाना शामिल है. इसके अलावा, इस अध्ययन में 'अपराध', हिंसा की घटनाओं, वन विभाग के साथ संघर्ष के इतिहास और शोधकर्ताओं सहित 'बाहरी लोगों' द्वारा गलत माने जाने वाले शिकार से संबंधित समुदायों की सांस्कृतिक परंपराओं के बारे में जानकारी साझा करना शामिल है. इस जानकारी को सार्वजनिक करने से उनके समक्ष वन विभाग द्वारा निशाना बनाए जाने का खतरा भी पैदा हो सकता है.

इसके लिए प्रतिभागी की सूचित सहमति, पहचान जाहिर न हो, इसे सुनिश्चित करने संबंधी कारगर उपाय और विश्वास पैदा करने की आवश्यकता होती है जो गुणात्मक अनुसंधान विधियों द्वारा संभव हैं. गुणात्मक शोध इस विशेष प्रकार की समृद्ध और गहन समझ बनाने का अवसर भी प्रदान करता है. यह शोधकर्ता को प्रतिभागी के साथ जुड़ाव द्वारा संदर्भ के बारे में बेहतर समझ बनाने में मदद करता है. यह विश्लेषण को अधिक मौलिक और व्यापक बनाता है. उदाहरण के लिए, इस शोध में ग्रामीणों के गहन साक्षात्कार के जरिए हम डब्ल्यूपीए के कारण होने वाले विस्थापन के बहुआयामी प्रभाव को समझ सके. इसलिए, इस पद्धति का चुनाव हमारे शोध को अधिक समग्र, व्यापक और संपूर्ण बनाता है.

अ. आधिकारिक दस्तावेजों का अध्ययन

मात्रात्मक आंकड़ों के अध्ययन और गुणात्मक अनुसंधान के अलावा, हमने डब्ल्यूपीए के तहत अपराधीकरण के मामलों को समझने के लिए विशिष्ट मामलों की चार्जशीट का विश्लेषण किया. चार्जशीट 'अपराध' और जांच के दौरान अपनाई जाने वाली प्रक्रियाओं के बारे में जानकारी प्रदान करती है, जिसमें गिरफ्तारी और जब्ती से संबंधित विवरण शामिल होते हैं. इन आधिकारिक दस्तावेजों के विश्लेषण से अभियोजन पक्ष के विवरणों, प्रक्रियागत कमी, अगर कोई रह गई हो और अन्य चीज़ों को समझने में मदद मिलती है. इन दस्तावेजों से अपराध के स्थान, अपराध की प्रकृति, शिकार किए गए जानवरों, शिकार की विधि और वन विभाग द्वारा अपनाई गई जब्ती और गिरफ्तारी की प्रक्रिया के बारे में विवरण प्राप्त होता है. उदाहरण के लिए, चार्जशीट में जहां जंगल के किसी विशेष हिस्से में 'अवैध रूप से' प्रवेश करने का अपराध दर्ज किया गया है, वहीं वन विभाग ने इन आरोप के समर्थन में बिना किसी आधार या सबूत के शिकार के मकसद का भी आरोप दर्ज किया. इस तरह के विवरण हमें यह समझने में मदद कर सकते हैं कि कैसे वन विभाग वन आश्रित समुदायों की आजीविका के अपराधीकरण में कानून को हथियार बनाता है. इसलिए, इन दस्तावेजों का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है.

IV. नमूना चयन का तरीका और इनका आधार

गुणात्मक अनुसंधान के लिए नमूना चयन के दो तरीके हैं: I) संभाव्यता नमूना चयन और II) उद्देश्यपूर्ण नमूना चयन. इस अध्ययन में हमने उद्देश्यपूर्ण नमूना चयन का उपयोग किया जहां अनुसंधान के लक्ष्य/उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए प्रतिभागियों को रणनीतिक रूप से चुना जाता है. प्रतिभागियों को शामिल करने या नहीं करने के मानदंड अनुसंधान के उद्देश्यों के आधार पर तय किए गए. इसके अलावा, यह देखते हुए कि इस शोध में संवेदनशील जानकारी के बारे में पड़ताल करना शामिल है और विश्वास स्थापित किए बिना ऐसा करना मुश्किल होता है, हमने स्नोबॉल सैंपलिंग का इस्तेमाल किया जो पहले से स्थापित

नेटवर्क का हिस्सा बन चुके लोगों तक पहुंच बनाता है. कार्य क्षेत्रों के शुरुआती भ्रमण ऐसे मध्यस्थों से संपर्क स्थापित करने के लिए किए गए थे जिनका डब्ल्यूपीए के तहत आरोपी लोगों के साथ विश्वास भरा रिश्ता है. क्षेत्र भ्रमण के दौरान हम डब्ल्यूपीए मामलों में पैरवी करने वकीलों से भी मिले जिनके जरिए हमने अन्य वकीलों से संपर्क किया. नमूना चयन की इस पद्धति ने हमें 'अभियुक्त' व्यक्तियों, वकीलों, वन विभाग के अधिकारियों, संरक्षणवादियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं सहित सभी संबंधित हितधारकों का साक्षात्कार कर आपराधिक न्याय प्रणाली में अपराध दर्ज होने से लेकर इसके निपटारे तक के चक्र को समझने में मदद की.

अ. नमूना का आकार

गुणात्मक अनुसंधान में आदर्श नमूना आकार के बारे में अनुसंधान पद्धति के विद्वानों में कोई सहमति नहीं है. इस विषय पर उपलब्ध साहित्य से जो सिद्धांत उभर कर आता है वह यह है कि अनुमानित परिपूर्णता/आंकड़ा संबंधी परिपूर्णता प्राप्त होने पर ही अध्ययन/अनुसंधान निर्णायक माना जाना चाहिए. दूसरे शब्दों में, बाद में किए गए साक्षात्कारों से कोई नया आयाम या आंकड़ा सामने नहीं आना चाहिए.

हमने कुल 45 लोगों का साक्षात्कार किया. इस शोध के दौरान, हमने प्रतिभागियों/उत्तरदाताओं की विभिन्न श्रेणियों के अपराधीकरण संबंधी सभी आयामों को शामिल कर आंकड़ा संबंधी परिपूर्णता के सिद्धांत का पालन करने का प्रयास किया. उदाहरण के लिए, 'अभियुक्त' श्रेणी के प्रतिभागियों में हमने विभिन्न समुदायों के लोगों के साक्षात्कार किए और विभिन्न जानवरों से जुड़े अपराधों एवं विभिन्न वन क्षेत्रों में हुए अपराधों को शामिल किया. इसी तरह, हमने कानून और उसके प्रभाव की विभिन्न समझ और व्याख्याओं को समझने के लिए वन विभाग के विभिन्न स्तर के कर्मचारियों और अधिकारियों का साक्षात्कार किया. हमने कान्हा नेशनल पार्क के बीट गार्ड्स, रेंज ऑफिसर्स, सब-डिवीजनल ऑफिसर्स, डिविजनल फॉरेस्ट ऑफिसर्स और फील्ड डायरेक्टर का साक्षात्कार किया. इसलिए, विभिन्न हितधारकों के साक्षात्कार के द्वारा हम पारंपरिक वन आश्रित समुदायों के अपराधीकरण के स्वरूपों और इसके प्रभावों के बारे में समग्र और गहन समझ हासिल करने में सक्षम हुए. साक्षात्कार संबंधी हमारी सख्त पद्धति के कारण उन सभी महत्वपूर्ण हितधारकों की राय शामिल हुई जो मात्रात्मक नमूनों में अक्सर छूट जाते हैं और यह पद्धति हमारे आंकड़ों को उपयुक्त और निर्णायक बनाती है.

ख. गुणात्मक आंकड़ों की सीमाएं

गुणात्मक पद्धति की सीमाओं को समझना महत्वपूर्ण है. ये सीमाएँ प्रतिभागियों के कुछ समूहों से संपर्क स्थापित करने से संबंधित हो सकती हैं या इसके बारे में हो सकती हैं कि एकत्रित साक्ष्य को किस हद तक सामान्यीकृत किया जा सकता है. शोध के विभिन्न चरणों में इन चुनौतियों का सामना किया गया और इन्हें समझा गया. इस शोध के दौरान एकत्रित साक्ष्य की सीमाओं में से एक यह था कि इसे केवल निश्चित सीमा तक ही सामान्यीकृत किया जा सकता है. अपराधीकरण के तरीकों और विशिष्ट उत्पीड़ित समुदायों पर इनके प्रभाव और इन समुदायों के अनुभवों से संबंधित एकत्र किए गए साक्ष्य विशिष्ट पारिस्थितिक परिवेश पर आधारित हैं. इसलिए, समान स्थितियों की संभावित मौज़ूदगी वाले अन्य परिवेश के लिए केवल 'अनुमानात्मक सामान्यीकरण' तैयार किए जा सकते हैं. एक अन्य सीमा साक्षात्कार के लिए प्रतिभागियों के चयन के बारे में है. स्नोबॉल सैंपलिंग, जैसा कि ऊपर बताया गया है, इस शोध के लिए सबसे उपयुक्त तरीका था. भले ही प्रतिभागियों के चयन में मध्यस्थों के पूर्वाग्रह को समाप्त करने के लिए प्रभावी उपाय किए गए थे, लेकिन यह दावा करना मुश्किल है कि अध्ययन पूर्वाग्रहों से पूरी तरह मुक्त है.

4. संबंधित साहित्य की समीक्षा

वन प्रशासन की ऐतिहासिक संरचना

यह अध्याय भारत में वन्यजीव संरक्षण की संरचना और टकरावों पर चर्चा करता है, यह दर्शाता है कि कैसे ये प्रयास आदिवासी समुदायों की प्रथाओं, विश्वास और संरक्षण प्रयासों के समानांतर चलते हैं. यह भारत में वन और वन्यजीव प्रशासन संबंधी विधायी अधिनियमों के निर्माण की दिशा का पता लगाता है, और विशेष रूप से डब्ल्यूपीए पर प्रकाश डालता है. संरक्षण और वन प्रशासन के टॉप-डाउन दृष्टिकोण को रेखांकित करते हुए, यह वन आश्रित समुदायों पर जटिल कानूनी व्यवस्थाओं को लागू करने में प्रतिबिंबित होता है और अधिकारों को लागू करने के लिए उनके प्रतिरोध और समझौते का दस्तावेजीकरण करता है.

I. औपनिवेशिक काल में शिकार के तरीकों की निशानदेही

भारत में शिकार संबंधी अधिकांश अकादमिक इतिहास में औपनिवेशिक शासन और भारतीय राजघरानों के शिकार के खेल का दस्तावेजीकरण किया गया है. हालांकि, हमारा अध्ययन गोंड और अन्य वन आश्रित एवं अनुसूचित जनजाति समुदायों के शिकार के तरीकों को समझने की कोशिश करता है, क्योंकि वे 19वीं और 20वीं सदी की शुरुआत से संबंधित हैं और इस दौरान जनजातीय पहचान का निर्माण करते हैं. पूर्व-औपनिवेशिक काल से, वन आश्रित और अनुसूचित जनजाति के अन्य समुदाय क्षेत्र के भूदृश्य के आधार पर विभिन्न उद्देश्यों के लिए शिकार और संग्रहण में संलग्न रहे हैं जिनमें आजीविका और धार्मिक त्योहारों सहित पारंपरिक और सांस्कृतिक उद्देश्यों के लिए ऐसा करना शामिल है. शिकार का यह तरीका ब्रिटिश शिकारियों के तरीकों से अलग था. 19वीं शताब्दी की शुरुआत के दस्तावेज बताते हैं कि देसी शिकारी पक्षियों को पकड़ते थे और आजीविका के लिए शिकार करते थे. इसके अलावा, जंगल में रहने वाले समुदायों के कई लोगों ने धनुष, तीर, जाल, फंदा जैसे हथियारों और साधनों का इस्तेमाल किया, जबकि अंग्रेजों ने बंदूकें जैसे आधुनिक हथियारों का इस्तेमाल किया.

बैगा गर्रा मांस (बाघ का बचा हुआ शिकार) खाते थे जो उनकी परंपरा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था. औपनिवेशिक शासन के दौरान, अंग्रेजों ने स्थानीय शिकारियों की मदद से जंगलों तक पहुंच बनाई और उनकी विशेषज्ञता एवं ज्ञान से मार्गदर्शन प्राप्त किया. इसलिए, शिकार गोंड समुदाय के औपनिवेशिक नृजातीय प्रतिनिधित्व में केंद्रीय विशेषता बन गया. गोंड समुदाय को स्वाभाविक रूप से जन्मजात शिकारी और लकड़हारा समझा जाता था और ब्रिटिश विवरणों में उन्हें अनिवार्य रूप से पारंपरिक 'शिकारी जनजाति' बताया गया. इसके अलावा, गोंड को सेवाएं उपलब्ध कराने वाले व्यक्तियों के रूप में चित्रित किया गया था, जिन्हें अंग्रेजों ने गाइड, ट्रैकर्स, बीटर्स, कुली और सेवकों के रूप में नियुक्त किया था.

औपनिवेशिक काल के दौरान, अन्य शिकार प्रथाएँ बनी रहीं. विजय मंडला की पुस्तक 'शूटिंग ए टाइगर' के अनुसार, जंगल में रहने वाले शिकारी 19वीं सदी की शुरुआत में आजीविका के लिए कलकत्ता के बाजारों में मांस की आपूर्ति करते थे. इस किताब के मुताबिक, 'शिकार की विशिष्ट परंपरा वाले समुदाय थे, जैसे कि मध्य भारत के कोइटोर और दुर्वास, जो शिकार के निश्चित मार्गों के साथ अपने क्षेत्रों को चिह्नित करते थे.' आदिवासी समुदाय पूजा और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों के लिए शिकार करते थे. उदाहरण के लिए, मध्य प्रदेश में ढाबा नाम के एक गांव में, बीबरी उत्सव में स्थानीय देवी को सूअर, बकरी या मुर्गियों जैसे जानवरों की बलि दी जाती है. पारधी, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और राजस्थान में रहने वाली एक घुमंतू जनजाति, शिकार करती थी और मांस सहित वन उत्पादों की बिक्री करती थी. साथ ही शाही शिकार अभियानों के दौरान स्थानीय शासकों को अपनी शिकार कौशल संबंधी सेवाएं प्रदान करती थी. पारधी अपने हुनर से जानवरों

को फंसाकर राजाओं के शिकार के मैदानों तक लाते थे. उनके शिकार अभियानों को 'हका' कहा जाता था, जो इनाम के बदले में शाही रसोई के लिए मांस उपलब्ध कराते थे. किसानों ने जंगली जानवरों से अपनी फसलों की रक्षा के लिए भी पारधियों को काम पर रखा. बदले में, उन्हें गांवों के आसपास रहने के लिए अस्थायी आश्रय प्रदान किया जाता था और उन्हें शिकार के मांस को अपने पास रखने की अनुमति होती थी, जिसका वे उपभोग करते थे और उसे बेचते भी थे. पारधी, जो अभी भी शिकार के लिए पारंपरिक उपकरणों पर निर्भर हैं, ने सदियों की मेहनत से शिकार के इन कौशलों को पैना किया है, जिनमें से कई आज भी इस्तेमाल में लाए जाते हैं. शिकार के विभिन्न तकनीकों के विकास के आधार पर, समुदाय के भीतर कई जाति समूहों का गठन किया गया. उदाहरण के लिए, फंदिया पारधी रस्सी के फंदे से शिकार करते हैं. दूसरी ओर, तेलिया पारधी सरीसृपों को पकड़ते हैं और उनका मांस और उनसे निकाला हुआ तेल बेचते हैं. पारधियों ने बंदूक जैसे आधुनिक उपकरणों को नहीं अपनाया है.

वन निवासियों के शिकार तकनीकों के विपरीत, औपनिवेशिक काल के अधिकारियों ने शिकार के लिए आधुनिक आग्नेयास्त्रों का इस्तेमाल किया और वन्यजीवों का अधिक व्यापक व्यावसायीकरण शुरू किया. उदाहरण के लिए, वन आश्रित शिकारी कुछ वन्य प्रजातियों के शिकार और बड़े जानवरों के अत्यधिक शिकार के खिलाफ थे. वे आनंद या व्यावसायिक जरूरतों के बजाय जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के इरादे से शिकार करते थे. आग्नेयास्त्रों के उपयोग, औपनिवेशिक सरकार द्वारा शिकार के व्यापक व्यावसायीकरण और खेल एवं मनोरंजन के लिए शिकार ने वन निवासी समुदायों के बीच नाराजगी पैदा की क्योंकि यह उनके संरक्षण करने वाले स्वभाव के खिलाफ था.

प्रतिकार में, वन आश्रित समुदायों ने औपनिवेशिक सरकार की गतिविधियों के प्रति अपनी असहमति व्यक्त करने के लिए कई तरीके अपनाए. बाघ जैसी कुछ प्रजातियों, जिन्हें कुलदेवता और पवित्र माना जाता था, के शिकार से सीधे इनकार करने से लेकर अन्य खतरनाक जानवरों के ठिकाने को गुप्त रखने तक, मातहत शिकारियों ने रचनात्मक तरीकों से अपना प्रतिरोध व्यक्त किया. उसी समय, औपनिवेशिक सरकार ने वन संसाधनों पर अधिक नियंत्रण करने और वन आश्रित शिकारियों पर नज़र रखने के लिए कई बदलाव किए, उनके शिकार कौशल का लाभ उठाने के बाद, उन्हें शिकारियों के रूप में चित्रित किया और अंततः वनों के क्षरण के लिए उन्हें जिम्मेदार ठहराया.

II. वन प्रशासन संबंधी कानून

अ. पूर्व औपनिवेशिक वन प्रशासन

उपरोक्त चर्चा को समझने के लिए, हमारे लिए भारत में पूर्व औपनिवेशिक वन प्रशासन को समझना महत्वपूर्ण है. 'कलोनीअलिज़म एंड एनवायरनमेंट इन इंडिया: अ कम्पेरेटिव पर्सपेक्टिव' में जैकस पॉचपदास ने लिखा है कि 'यूरोपीय लोगों के आने से पहले जंगल में रहने वाला और इस पर आश्रित समाज ऐसे अलग-थलग समुदाय नहीं थे, जो इतिहास की शुरुआत से सभी बाहरी प्रभाव से अछूते थे.' यह बताता है कि जंगलों और मैदानों में रहने वाले समुदायों के बीच जीवंत संबंध था. जीवन और प्रकृति के साथ उनके संबंध को केवल सहजीवन और संतुलन बताना ऐतिहासिक गलती होगी. पूर्व-औपनिवेशिक वन प्रशासन संबंधी यह त्रुटिपूर्ण परिप्रेक्ष्य इस तथ्य के बारे में बताने में विफल रहता है कि न केवल वन संसाधनों तक पहुंच असमान थी, बल्कि मौजूदा सामाजिक वर्गीकरण द्वारा यह असामनता और भी अधिक बढ़ गई थी,

जो कमोबेश भारत में जाति व्यवस्था का प्रत्यक्ष परिणाम थे. यह एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसके पड़ताल के लिए और ज्यादा शोध किया जाना चाहिए. झूम खेती, शिकार और संग्रहण आवश्यक रूप से जीवन निर्वाह के आदिम तरीके नहीं थे, बल्कि बाजार, भूमि स्वामित्व और लगान जैसे कारकों द्वारा पैदा हुए बदलाव के जवाब में सामने आए थे. इससे भी महत्वपूर्ण बात को उपर्युक्त लेख ठीक ही इंगित करता है कि 'अछूते वन की अवधारणा, जो कि पश्चिमी मिथक है, को लागू करने के साथ महत्वपूर्ण कानूनी और आर्थिक निहितार्थ जुड़े हुए थे. चूँकि परिभाषा के अनुसार अछूते आदिम वन पर किसी का अधिकार नहीं था, इसलिए केवल यह तर्कसंगत प्रतीत हुआ कि इसका नियंत्रण औपनिवेशिक सरकार में निहित होना चाहिए.

ब. वन प्रशासन के प्रति औपनिवेशिक दृष्टिकोण

औपनिवेशिक शिकार संबंधी बड़ी संख्या में उपलब्ध संबंधित साहित्य और कई विवरणों के अनुसार, औपनिवेशिक काल में शिकार औपनिवेशिक शासकों के मनबहलाव की गतिविधि के रूप में शुरू हुआ. साथ ही इसे स्थानीय वन आश्रित समुदायों के बीच अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करने और प्रभुत्व स्थापित करने के लिए भी आयोजित किया जाता था. शिकार का यह स्वरूप आगे चलकर क्षेत्र व्यवस्थित करने (territorialisation) के कार्य रूप में विकसित हुआ, और औपनिवेशिक शासकों ने खुद को जंगलों और भूमि के मालिकों और स्वामी के रूप में स्थापित किया. विशेष रूप से, शिकार के बड़े आयोजनों ने इसे ठोस स्वरुप प्रदान किया. वनों के स्वरुप में हुए इस बदलाव, शिकार के मैदानों से लेकर औपनिवेशिक स्वामियों द्वारा शासित भूमि तक, ने आज़ादी के बाद भारत में वनों के व्यावसायीकरण की नींव रखी. वन भूमि के उपयोग और स्वामित्व में हुए इस बदलाव में औपनिवेशिक कानून ने बड़ी भूमिका निभाई है.

यह समझना भी महत्वपूर्ण है कि औपनिवेशक शासकों की शिकार और वन आश्रित समुदायों के जंगलों और जानवरों के साथ संबंधों के बारे में क्या समझ थी. जबकि वन आश्रित समुदाय अभी भी जंगलों और जानवरों के साथ सह-अस्तित्व में रह रहे हैं, उपनिवेशवादियों ने बाघों को, जिनका वे शिकार करते थे, अपने समकक्ष के ऐसे प्राणी के रूप में देखा जो उनकी नैतिकता, भोजन संबंधी पसंद और आवास को साझा करते थे. यह पहचान शिकारियों की एक नई आत्म-परिभाषा के साथ भारतीय लोगों पर उनके शासन की भावना से जुड़ी हुई है. हीदर शेल के अनुसार, बाघ के साथ ब्रिटिश शिकारियों की समानता की भावना इस नए दृढ विश्वास से प्रभावित थी कि मर्दानगी अनिवार्य रूप से शिकारी प्रवृति की होती है.

साथ ही, अंग्रेजों ने मुगलों और वन निवासियों के कई शिकार परंपराओं को शिकार करने की अपनी रणनीति का हिस्सा बनाया और 'शिकार' शब्द को भी अपनाया. इस प्रकार, शिकार सांस्कृतिक संपर्क के ऐतिहासिक तरीके का प्रतिनिधित्व करता है जिसके माध्यम से ब्रिटिश भारतीयों, विशेष रूप से भारतीय अभिजात वर्ग, के साथ सामाजिक संपर्क बनाने में सफल हुए.

उपनिवेशवादियों ने शिकार के देसी तरीके को 'बेपरवाह' हत्या के रूप में देखा क्योंकि वे अंग्रेजों की तरह आधुनिक तरीकों का इस्तेमाल नहीं करते थे. अंग्रेजों ने शिकार के लिए आधुनिक बंदूकों का इस्तेमाल शुरू किया, जानवरों की हत्याओं को नैतिक रूप से सही ठहराया और यह प्रदर्शित किया कि उनके शिकार का तरीका स्वच्छ है एवं इसमें जानवरों को कोई दर्द नहीं होता है. 1857 के विद्रोह के बाद, शिकार पर और ज्यादा प्रतिबंध लगाए गए, शिकार के खेल संबंधी कानूनों को संहिताबद्ध किया गया और हथियार जब्त किए गए. इसके अलावा, वन आश्रित क्षेत्रों से बड़ी संख्या में विद्रोह का सामना करते हुए, अंग्रेजों ने शिकार और जंगलों तक पहुंच पर प्रतिबंध लगाकर जवाबी कार्रवाई की.

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के शुरुआती दिनों में उपनिवेशवादियों द्वारा 'हाथियों जैसे बड़े जानवरों को बाघों के समान एक विनाशकारी जानवर माना जाता था, जिनके उन्मूलन को नकद इनाम देकर प्रोत्साहित किए जाने की ज़रूरत थी.'

शिकार के अधिकार को प्रतिबंधित करने के लिए कुछ शिकार संगठनों और क्लबों का गठन किया गया. 'एकाधिकार का उद्देश्य दरअसल संरक्षण नहीं था, बल्कि यह एक महत्वपूर्ण संसाधन के दोहन और उसे कारगर बनाए रखने का साधन था.' विद्वानों का दावा है कि किसी भी प्रकार के वन प्रशासन के पीछे प्राथमिक उद्देश्य अधिकतम राजस्व प्राप्त करने के लिए वन संसाधनों के कुशल दोहन को प्रोत्साहित करना था. इस मकसद से, भारत के गवर्नर-जनरल ने 1865 में आइएफ़ए पारित किया. अधिनियम का उद्देश्य सरकारी वनों का प्रबंधन और संरक्षण करना था. इस कानून ने औपनिवेशिक सरकार को किसी भी वन भूमि या बंजर भूमि को 'आरक्षित', 'संरक्षित' या 'ग्रामीण वन' घोषित करने का अधिकार प्रदान किया, जो इसके बाद राज्य द्वारा प्रशासित होते. इसका मतलब यह था कि कुछ को छोड़कर सभी अधिकार, जो अस्तित्व में थे या मान्यता प्राप्त थे, समाप्त हो गए. 1878 में बाद के संशोधन ने जंगलों पर राज्य के नियंत्रण को और मजबूत कर दिया. विशेष रूप से, स्थानीय समुदायों के परंपरागत अधिकारों को औपनिवेशिक शासन द्वारा हमेशा ऐसा अनुचित विशेषाधिकार माना जाता था, जिन्हें कभी भी अधिकारों के रूप में मान्यता नहीं दी जानी चाहिए. इसके अलावा, इस कानून ने समुदायों के अधिकारों को व्यवस्थित करने के लिए वन बंदोबस्त अधिकारियों को और अधिक शक्ति एवं अधिकार भी दिया. कानून में अंतिम संशोधन 1927 में किया गया था और यह आज तक स्वतंत्र भारत में वन प्रशासन का आधार है. इस वन प्रशासन संरचना ने बाद के वन्यजीव कानूनों के लिए आधार तैयार किया.

स. स्वतंत्रता बाद के मॉडल और नीतियां

स्वतंत्र भारत में कानूनों और नीतियों ने वन प्रशासन की औपनिवेशिक परंपराओं को बड़े पैमाने पर जारी रखा है. राष्ट्रीय वन नीति के तहत जंगल स्थानीय समुदायों के हितों की तुलना में 'राष्ट्रीय हित' के लिए ज्यादा अहम हैं. इसका अनिवार्य रूप से मतलब है कि स्थानीय समुदायों के हितों की अनदेखी की जा सकती है और 'राष्ट्रीय हित' के नाम पर इनसे समझौता किया जा सकता है. शुरुआत में, वनों को राज्य सूची के तहत रखा गया था, लेकिन 1976 में नई नीति के लागू होने के बाद, उन्हें समवर्ती सूची के तहत लाया गया (शर्मा और कोहली, एनडी, #). शुरुआती चरणों में, टीक और यूकेलिप्टस जैसे व्यवसायिक पेड़ों के बड़े पैमाने पर पौधारोपण के माध्यम से इमारती लकड़ी आधारित वानिकी पर जोर दिया गया था. वास्तव में, 1966-67 में वनीकरण पर खर्च किए गए 67 करोड़ में से लगभग 56 करोड़ अकेले 'उत्पादन वानिकी' पर खर्च किए गए थे. हालाँकि, 1970 के दशक के मध्य में, क्रमिक बदलाव शुरू हुआ जिसमें वन नीतियों में 'उत्पादन उन्मुख वानिकी' से 'सामाजिक वानिकी' कार्यक्रमों पर जोर दिया जाने लगा. 1972 में, इंदिरा गांधी सरकार ने वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम पारित किया गया. दस्तावेजों से पता चलता है कि यह कानून अन्य अंतर्राष्ट्रीय कारकों, जिन्होंने सरकार पर दबाव बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, के साथ-साथ मुख्य रूप से कई वन्यजीव समर्थकों के प्रभाव के कारण अस्तित्व में आया था. कानून के तहत पूरे भारत में संरक्षित क्षेत्रों (पीए) का निर्माण हुआ. वर्तमान में, सरकार द्वारा संरक्षित क्षेत्र के रूप में वर्गीकृत कुल भूमि भारत के कुल भूमि का लगभग 4.5% है. पीए बनाने की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप कई एसटी समुदायों के साथ-साथ विभिन्न अन्य वन आश्रित समुदायों का विस्थापन हुआ. केंद्र सरकार ने भी 1980 में पारित वन संरक्षण अधिनियम (एफसीए) के माध्यम से अपने अधिकार को विस्तारित

किया. इसने राज्यों के अधिकार को वनों को अनारक्षित करने या गैर-वानिकी उद्देश्यों के लिए उपयोग करने तक सीमित कर दिया. इस अधिनियम ने वनों के सामाजिक और पारिस्थितिक महत्व को और ज्यादा मान्यता दी, लेकिन स्थानीय समुदायों की चिंताओं और चुनौतियों को शायद ही संबोधित किया. व्यावसायिक वानिकी दृष्टिकोण से संरक्षण-आधारित वानिकी के इस बदलाव के बाद भी वन भूमि और संसाधनों पर राज्य का नियंत्रण बरकरार रहा.

इसके अलावा, 1988 की वन नीति ने 'पुराने दृष्टिकोण' में बदलाव लाया और अंततः वन प्रशासन में स्थानीय भागीदारी के महत्व को मान्यता दी. इसके बाद, भारत सरकार ने 1990 में संयुक्त वन प्रबंधन की शुरूआत की. हालाँकि, इन पहलकदमियों संबंधी अध्ययनों से पता चलता है कि स्थानीय वन प्रबंधन को बढ़ावा देने के बजाय, वन विभाग ने पहलकदमियों के तहत गठित समितियों के उद्देश्यों को नियंत्रित और निर्धारित किया है. 1996 में, अनुसूची V के क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाओं को और अधिक शक्तियाँ प्रदान करने के इरादे से अधिक क्रांतिकारी कानून लाया गया. जेएफएम वन विभाग द्वारा नियंत्रित समिति निर्माण पर जोर देता था जबकि इसके विपरीत पेसा समुदाय आधारित वन प्रबंधन को अनिवार्य बनाता है. लेकिन राज्यों ने, कुछ को छोड़कर, इस कानून को लागू करने संबंधी नियमावली न बनाकर प्रभावी रूप से इस कानून को बेमानी बना दिया है. विभिन्न एसटी समुदायों के बहुत दबाव के बाद, भारत सरकार ने 2006 में एफआरए पारित किया. यह कानून ऐतिहासिक परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि यह वन निवासियों और वन आश्रित समुदायों के साथ किए गए 'ऐतिहासिक अन्याय' को मान्यता देता है और उन प्रक्रियाओं को निर्धारित करता है जिनके जरिए ये समुदाय वन और उसके संसाधनों संबंधी अधिकार प्राप्त कर सकते हैं. इसके बावजूद, राज्यों ने या तो नियमों को लागू न कर या केवल चुनिंदा तरीके से ऐसा कर अपनी जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ लिया है, जिससे यह ऐतिहासिक कानून निष्प्रभावी हो गया है.

इस चर्चा से एक बात पूरी तरह स्पष्ट है: औपनिवेशिक काल से लेकर अब तक, भारत में स्थानीय वन आश्रित समुदायों, विशेष रूप से वन में रहने वाले एसटी समुदायों ने सरकारों (औपनिवेशिक और स्वतंत्र दोनों) द्वारा उन्हें विस्थापित कर या उन्हें वन संबंधी अधिकारों से वंचित कर वनों पर नियंत्रण करने के प्रयासों के खिलाफ विद्रोह किया और उनका विरोध किया है. भले ही इस प्रतिरोध ने, इस देश में समकालीन वन प्रशासन के स्वरुप को आकार देने में कुछ हद तक मदद की है, राज्यों और केंद्र सरकार द्वारा एफआरए लागू करने संबंधी पहल की कमी से पता चलता है कि हमें अभी भी लंबा रास्ता तय करना शेष है.

III. डब्ल्यूपीए कानून निर्माण का इतिहास

अ. डब्ल्यूपीए की पृष्ठभूमि

औपनिवेशिक तंत्र ने वन आश्रित समुदायों की मदद से जंगलों पर अपना नियंत्रण स्थापित किया. वन्यजीवों की रक्षा के लिए औपनिवेशिक शासकों द्वारा पारित पहला कानून वन्य पक्षी संरक्षण अधिनियम, 1887 था जिसके द्वारा निर्दिष्ट जंगली पक्षियों को रखने और इसकी बिक्री पर रोक लगा दी गई थी. उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की इसी अवधि के दौरान, इन समुदायों को औपनिवेशिक शासन द्वारा रास्ता बताने वाले के रूप में इस्तेमाल किया गया. साथ ही, ये समुदाय अपनी आजीविका के लिए जंगल और इसके संसाधनों पर बहुत ज्यादा निर्भर थे. ब्रिटिश सरकार द्वारा इन निर्भरताओं को विनियमित करने के प्रयास किए गए. इस उद्देश्य को ठोस रूप प्रदान करने के लिए, 1887 के अधिनियम के स्थान पर वन्य पक्षी और पशु संरक्षण

अधिनियम, 1912 लाया गया, जिसमें जंगली जानवरों को मारने, रखने या बेचने पर प्रतिबंध लगाया गया. इन दोनों कानूनों ने विशिष्ट पक्षियों या जानवरों को संरक्षित करने की जरुरत संबंधी स्थानीय सरकार की राय के आधार पर तैयार अनुसूची के तहत निषेधों के माध्यम से संरक्षण किए जाने वाले पक्षियों और जानवरों को वर्गीकृत किया. इसके तहत ऐसे पक्षियों और जानवरों पर निषिद्ध कार्यों की अनुमति देने के लिए 'वैज्ञानिक अनुसंधान के हित में' लाइसेंस प्रदान करने का भी प्रावधान किया गया. निषेधों के दो अपवाद थे: आत्मरक्षा और संपत्ति की प्रामाणिक रक्षा. इस स्पष्ट और लिखित बदलाव ने औपनिवेशिक तंत्र को वन संसाधनों और शिकार, जिसे एक खेल के रूप में विकसित किया गया था, के व्यावसायिक दोहन के अपने उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए 25 साल का समय प्रदान किया, जो कि आजीविका के लिए आदिवासियों की वन पर निर्भरता के विपरीत था.

इसके बाद वन्य जीवों के संरक्षण के लिए एक अलग क्षेत्र निर्माण की अवधारणा को 1935 के अधिनियम में पेश किया गया, जिसे वन्य पक्षी और पशु संरक्षण संशोधन अधिनियम 1935 कहा गया. इस अधिनियम के जरिए, जंगली पक्षियों और जानवरों के संरक्षण को राज्य सूची में डाल दिया गया.

1952 में, केंद्रीय वन्यजीव बोर्ड की स्थापना द्वारा वन्यजीव संरक्षण के मुद्दों के निर्धारण और इन पर सलाह देने के लिए केंद्रीय या राष्ट्रीय निकाय की व्यवस्था शुरू की गई. यह वन्यजीव प्रशासन को स्थानीय से केंद्रीय स्तर पर स्थानांतरित करने का साक्षी बना. बोर्ड के पहले अध्यक्ष, महाराजा जयचामाराजा वाडियार ने 1952 में उद्घाटन बैठक में बोलते हुए कहा था कि वन्यजीव संरक्षण 'दीर्घकालिक नीति' से संबंधित मुद्दा होने के कारण इसे 'दलीय राजनीति की खींचतान' से ऊपर रखने की आवश्यकता है और इससे संबंधित मुद्दों का 'स्थानीय के बजाय राष्ट्रीय स्तर' पर निपटारा किया जाना चाहिए. बाद में स्टॉकहोम घोषणा ने वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम, 1972 की आधारशिला तैयार की.

ब. डब्ल्यूपीए क्या है?

पूरे देश में वन्यजीवों की सुरक्षा के लिए एक समान कानून बनाने, वन्यजीवों के शिकार और उनके किसी अंग या खाल के व्यापार को रोकने और राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभयारण्यों जैसे संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना और रखरखाव संबंधी मापदंड निर्धारित करने के लिए 1972 में डब्ल्यूपीए पारित किया गया था. इसे 1972 के मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (स्टॉकहोम घोषणा) के बाद अपनाया गया और संविधान के अनुच्छेद 252 के तहत पारित किया गया था क्योंकि वनों का प्रबंधन राज्य सूची में है.

1972 का कानून जंगली जानवरों, पक्षियों और पेड़-पौधों की सुरक्षा और संरक्षण के लिए लक्ष्य निर्धारित करता है. इसके अलावा, अन्य बातों के साथ-साथ इसमें उनके आवासों के प्रबंधन और व्यापार या वाणिज्य के विनियमन और नियंत्रण संबंधी प्रावधान भी किए गए हैं. कानून को प्रबंधित, नियमित और नियंत्रित करने के लिए, इसके तहत कुछ अपवादों के साथ जंगलों में शिकार पर रोक लगाने का प्रावधान भी किया गया. शिकार की अनुमति केवल शिक्षा या वैज्ञानिक अनुसंधान के उद्देश्य और किसी व्यक्ति या संपत्ति की रक्षा के मामले में दी जाती है. इसके अलावा, कुछ जानवरों को शिकार से संरक्षित किया गया है, जबकि अनिवार्य लाइसेंस प्राप्त कर अन्य का शिकार किया जा सकता है. इस प्रकार, 1972 अधिनियम के प्रावधान 1912 के औपनिवेशिक कानून से बहुत मिलते-जुलते हैं. डब्ल्यूपीए में छह अनुसूचियां हैं जो अलग-अलग स्तर की सुरक्षा प्रदान करती हैं. अनुसूची I और अनुसूची II का भाग II पूर्ण सुरक्षा प्रदान करते हैं - इनके

तहत अपराध के लिए उच्चतम दंड निर्धारित हैं. अनुसूची III और अनुसूची IV में सूचीबद्ध प्रजातियां भी संरक्षित हैं, लेकिन इनके तहत बहुत कम दंड का प्रावधान हैं. अनुसूची V के अंतर्गत आने वाले जानवर, उदाहरण के लिए, कौवे, चमगादड़ और चूहे, कानूनी रूप से कृमी प्रजाति माने जाते हैं और इनका बेरोकटोक शिकार किया जा सकता है. अनुसूची VI में निर्दिष्ट स्थानिक पौधों की खेती और पौधारोपण को प्रतिबंधित किया गया है. और अंत में, यह अधिनियम राज्य सरकार को किसी भी क्षेत्र को अभयारण्य या राष्ट्रीय उद्यान घोषित करने का अधिकार देता है, यदि वह मानता है कि यह वन्य जीवन और पर्यावरण की रक्षा या विकास के लिए उपयुक्त पारिस्थितिक, जीव-वनस्पतीय, भूआकृतिक (geomorphological), प्राकृतिक या प्राणि-शास्त्रीय महत्व का है.

सी. डब्ल्यूपीए के तहत वन्यजीवों का वर्गीकरण

डब्ल्यूपीए की परिभाषा के अनुसार 'कोई भी जानवर, जल या भूमि पर स्थित वनस्पति' वन्य जीवन का हिस्सा है. अनुसूची VI वन्यजीवों को विभिन्न श्रेणियों की सुरक्षा प्रदान करता है. अनुसूची I से IV में निर्दिष्ट किसी भी जंगली जानवर का शिकार तब तक प्रतिबंधित है जब तक कि यह आत्मरक्षा में न हो या यह मुख्य वन्यजीव पालक की अनुमति से न किया गया हो. कमजोर या मानव जीवन के लिए खतरनाक जानवरों का शिकार किया जाता है. हालाँकि, अगर आत्मरक्षा के लिए आवश्यक होने पर डब्ल्यूपीए के किसी भी प्रावधान के विरुद्ध कोई अन्य कृत्य किया जाता है तो आत्मरक्षा के तहत प्राप्त छूट प्राप्त नहीं होगी. इस प्रकार डब्ल्यूपीए के तहत मुकदमा चलाने के कई मौके होते हैं और कानूनी बचाव के लिए आत्मरक्षा का दावा करना पर्याप्त नहीं है. डब्ल्यूपीए अनुसूचियों में उल्लिखित विशिष्ट वन्यजीवों के शिकार पर किसी भी स्थान पर रोक लगाता है और राष्ट्रीय उद्यान, अभयारण्य, कंजर्वेशन रिज़र्व या सामुदायिक रिज़र्व के रूप में निर्दिष्ट संरक्षित क्षेत्र में किसी भी वन्यजीव का शिकार प्रतिबंधित करता है.

यह कानून राष्ट्रीय उद्यानों और बाघ अभ्यारण्यों में मानवीय गतिविधियों को कड़ाई से प्रतिबंधित करता है, केवल उन गतिविधियों को छोड़कर जो वन्यजीव संरक्षण के हित में हैं. अभ्यारण्य, कंजर्वेशन रिज़र्व या सामुदायिक रिज़र्व में मुख्य वन्यजीव पालक की अनुमति से सीमित गतिविधियां संचालित की जा सकती हैं.

अनुसूची I से IV में निर्दिष्ट वन्यजीवों का शिकार निषिद्ध है और इसे दंडनीय अपराध माना जाता है. अनुसूची V में कृमी प्रजातियों की एक सूची है जिनके शिकार पर रोक नहीं है. अनुसूची VI में पौधों की प्रजातियों की एक सूची है जिन्हें अपने पास रखना या इनकी बिक्री या परिवहन करना निषिद्ध है और ऐसे पौधों की प्रजातियों की किसी तरह की खेती केवल मुख्य वन्यजीव पालक की अनुमति से ही की जा सकती है.

द. डब्ल्यूपीए में संशोधन

अधिनियम में छह संशोधन साल 1982, 1986, 1991, 1993, 2003 और 2006 में हुए हैं. 1982 के संशोधन विधेयक के पारित होने से पहले, औद्योगिक विकास सहित मानवीय गतिविधियों का अत्यधिक हस्तक्षेप हुआ था और जिस कारण बड़े पैमाने पर अवैध शिकार की घटनाएं हुईं. इससे वन्यजीव संरक्षण के प्रयासों में तेजी गिरावट आई. इसे त्रिपुरा के एक लोकसभा प्रतिनिधि द्वारा स्वीकार किया गया. उन्होंने कहा कि झूम खेती करने वाले आदिवासियों के आजीविका और भूमि संबंधी अधिकारों का नुकसान होगा

और उनके लिए एकमुश्त मुआवजे और अभियोजन से सुरक्षा की मांग की. सदन के ध्यान में यह भी लाया गया था कि अभयारण्यों के भीतर और बाहरी इलाकों में स्थित जनजातीय बस्तियों को वन विभाग के हाथों आपराधिक मुकदमे के रूप में उत्पीड़न का सामना करने की संभावना ज्यादा है. हालाँकि, इस तरह की सुरक्षा को 1982 के संशोधन में जगह नहीं मिली.

1991 में वन्य जीवों की सुरक्षा के दायरे में पौधों की प्रजातियों को भी शामिल किया गया. 1991 के संशोधन अधिनियम के लिए चर्चा के दौरान, वन्यजीव प्रशासन के प्रावधानों ने प्रभावित समुदायों के अधिकारों को अंतर्निहित विरोधाभासों के रूप में मान्यता नहीं दी और इस कारण डब्ल्यूपीए के कारण निवास-स्थानों को होने वाले नुकसान के लिए मुआवजा का प्रावधान नहीं किया गया. साथ ही इसने वाणिज्यिक और राजनीतिक हित समूहों द्वारा वनों के दोहन की अनुमति दी. संरक्षण समर्थक प्रशासन से प्रभावित समुदायों को मुआवजा देने का सवाल उठाया गया था, लेकिन यह न्यायपूर्ण मुआवजे के लिए वैधानिक उपाय उपलब्ध कराने में विफल रहा.

2003 के संशोधन द्वारा सबसे क्रांतिकारी बदलाव लाए गए, जिसने अधिनियम के अब तक उद्देश्यों को बदल डाला. 2003 का संशोधन शिकार के पारंपरिक तरीकों, जैसे जंगली जानवरों को पकड़ना, उलझाना या फँसाना, को अधिनियम के तहत ले आया. ऐसा ही एक सुझाव श्री दिग्विजय सिंह ने रखा जो विचार करने योग्य था. सिंह ने काले हिरण की अत्यधिक जनसंख्या और मानव आबादी पर इसके प्रभाव के बारे में वैध चिंताएं उठाईं. अन्य चिंताओं, विशेष रूप से मध्य प्रदेश से संबंधित चिंताएं, में वन्यजीवों की बढ़ती आबादी के कारण मानव बस्तियों की सुरक्षा की समस्या, और अभयारण्यों और आरक्षित/संरक्षित वनों के पास रहने वाले समुदायों के जीवन और संपत्ति को होने वाला नुकसान शामिल था.

हालाँकि, 2003 के संशोधन में पीए की दो नई श्रेणियों - कंजर्वेशन रिज़र्व और सामुदायिक रिज़र्व के निर्माण के जरिए वन संरक्षण प्रशासन में सामुदायिक भागीदारी शामिल की गई, जिनका प्रबंधन ग्राम पंचायतों, गैर सरकारी संगठनों और अन्य विशेषज्ञों द्वारा किया जाना था. हालाँकि, इसने विशिष्ट जनजातीय समुदायों को ऐसे समुदायों के रूप में नामांकित किया जो वन्यजीवों के खिलाफ संगठित अपराध में लगे हुए थे. ऐसा कर इस संशोधन ने कुछ जनजातियों को 'जन्मजात अपराधियों' के रूप में नामांकित करने के वन्यजीव प्रशासन के औपनिवेशिक दृष्टिकोण को प्रभावी ढंग से फिर से लागू किया. इसने समावेशन के प्रयासों को बहुत नुकसान पहुँचाया और वन आश्रित समुदायों के बहिष्करण के व्यापक तंत्र के निर्माण का कारण बना.

ई. बहिष्करण करने वाली डब्ल्यूपीए की रूपरेखा

भारतीय संसद द्वारा साम्राज्यवाद की जगह समाजवाद के दर्शन को स्वीकार करने और वनों पर निर्भर मनुष्यों (वन्यजीव की तरह) को संरक्षण के योग्य श्रेणी के रूप में शामिल करने के बावजूद डब्ल्यूपीए वन्य जीव की रक्षा करना चाहता है. इसके विपरीत, भारत में वन्यजीव संरक्षण कानून ने वनों पर निर्भर समुदायों को न केवल बाहर कर दिया है, बल्कि उन्हें आजीविका के अधिकार से भी वंचित कर दिया है और भोजन एकत्र करने की उनकी दैनिक गतिविधियों को अपराध बनाकर उनके उत्पीड़न का मार्ग प्रशस्त किया है.

वर्ल्ड वाइल्ड फंड फ़ॉर नेचर इंडिया बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया और अन्य में दिल्ली उच्च न्यायालय ने पाया कि डब्ल्यूपीए के पारित होने से पहले संसदीय बहस के एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि इसका

'प्रत्येक पक्ष द्वारा समान रूप से स्वागत किया गया था.' यह जमीनी असलियत से बहुत दूर है. उन चर्चाओं के दौरान, वन मंत्रालय ने सभी राज्यों को पत्र भेज कर शिकार के ऐसे सामुदायिक गतिविधियों के बारे में जानकारी मांगी थी, जिसे वैध किया जा सकता था. सिर्फ अंडमान द्वीप समूह की जनजातियों ने ही जानकारी उपलब्ध कराई और परिणामस्वरूप, उनके शिकार से जुड़े अधिकारों को स्वीकार किया गया. यह स्पष्ट रूप से डब्ल्यूपीए कानून बनाने वाली संस्था की उपेक्षा को दर्शाता है, क्योंकि आदर्श स्थिति में वन में रहने वाले समुदायों, जो सभी प्रकार के पुनर्वास और वन्यजीव प्रशासन का खामियाजा भुगतेंगे, से कानून पारित करने से पहले परामर्श किया जाना चाहिए था. 1972 में डब्ल्यूपीए पारित करते हुए प्रस्तुत तर्क न केवल विशेष रूप से वन्यजीव में हो रही तेज गिरावट को रोकने पर केंद्रित थे, बल्कि इसमें आदिवासी समुदायों की वाबदेही तय करने के तर्क को भी फिर से लागू किया.

डब्ल्यूपीए निर्माण और इसके संशोधनों की विधायी पृष्ठभूमि, जिसमें 2021 का नवीनतम संशोधन विधेयक शामिल है, वन आश्रित समुदायों और अन्य समुदायों, जो आरक्षित वन क्षेत्रों पर आश्रित हैं या इनके करीब रहते हैं, के हितों के पूर्ण बहिष्करण को दर्शाते हैं. डब्ल्यूपीए के तहत वनों पर जनजातीय समुदायों के पारंपरिक अधिकारों को मान्यता देने के लिए कोई ढांचा नहीं है, एक ऐसा ढांचा जो सहभागी संरक्षण प्रशासन के लिए स्रोत के रूप में काम कर सकता हो और जो वन संसाधनों पर उनके अधिकारों का नियमन करने वाले समुदायों के पारंपरिक बंदोबस्त पर आधारित हो.

बहिष्करण केवल कानून तक ही सीमित नहीं था. राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) ने वनों पर जनजातीय समुदायों की निर्भरता की अनदेखी करते हुए पर उन्हें वनों के क्षरण लिए जिम्मेदार ठहराया. यह समस्या बढ़ाने वाला था क्योंकि न केवल वनों के उपयोग पर स्पष्ट प्रतिबंध थे बल्कि अब वनों के क्षरण का आरोप और वनों की देखभाल की अतिरिक्त जिम्मेदारी वन आश्रित समुदायों पर थी. वनों और इसके वन्य जीवन पर परस्पर निर्भरता की प्रत्यक्ष संस्कृति और परंपरा वाले स्थानीय समुदायों को वन्यजीव संरक्षण के लिए खतरा माना गया है, एक ऐसी धारणा जो औपनिवेशिक शासन से लेकर भारत में समकालीन वन्यजीव प्रशासन के दौरान भी बेरोकटोक बनी हुई है. विमुक्त घुमंतू और अर्ध-घुमंतू जनजातियों की राज्यवार पहचान कर रिपोर्ट तैयार करने के लिए तीन साल की अस्थायी अवधि के लिए जनवरी 2015 में इदाते आयोग की स्थापना की गई थी. आयोग को उनकी विकास स्थिति का आकलन करते हुए और उनके उत्थान के तरीकों की सिफारिश करते हुए अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी थी. अपनी रिपोर्ट में उन्होंने कहा कि 'औपनिवेशिक काल के सीटीए के निरस्त होने के 65 साल बीत जाने के बावजूद, अधिकारी अभी भी इनमें से कई समुदायों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं.'

IV. डब्ल्यूपीए के तहत विवादित भूमि पर जनजातीय प्रतिरोध और वन विभाग की ज्यादतियां

वन आश्रित समुदायों ने लगातार औपनिवेशिक शासन का विरोध किया और आजाद भारत में भी उनके खिलाफ अन्याय जारी रहा है. औपनिवेशिक शासन द्वारा लागू कानूनी प्रावधानों ने समुदायों को उनकी भूमि, जंगल और संस्कृति से अलग कर दिया. खतरनाक जानवरों के निवास स्थान की जानकारी गुप्त रखने के अलावा समुदायों ने औपनिवेशिक शासन के खिलाफ विद्रोह और ग़दर के जरिए जवाबी कार्रवाई की. 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वन क्षेत्रों में कई विद्रोह हुए, जिसने ब्रिटिश प्रशासन और क्षेत्र में आधिपत्य रखने वाली ताकत के रूप में इसके अस्तित्व को गंभीर चुनौती पेश की. औपनिवेशिक शासन ने भविष्य में किसी

भी विद्रोह और गदर की संभावना को व्यवस्थित रूप से ख़त्म किया.

अ. औपनिवेशिक शासन के खिलाफ जनजातीय प्रतिरोध

औपनिवेशिक काल के दौरान, सरकार ने जंगल में रास्ता बताने में मदद करने के लिए स्थानीय शिकारियों की सेवाएं लेकर संसाधनों के दोहन और शिकार के लिए जंगलों में दाखिल होना शुरू किया. औपनिवेशिक ताकतों ने अपनी व्यावसायिक जरूरतों को पूरा करने के लिए जंगलों की वनस्पतियों और जीवों का दोहन शुरू कर दिया और जानवरों को मारने के लिए आधुनिक हथियारों का इस्तेमाल प्रारंभ किया. औपनिवेशिक शासन ने यह कहानी गढ़ी कि कि इन हथियारों से शिकार करने पर जानवरों को दर्द नहीं होता. इसके विपरीत, स्थानीय शिकारियों ने इस तरीके का पूरी तरह विरोध किया. उन्होंने बाघ जैसे जानवरों की कुछ प्रजातियों को मारने से इनकार कर दिया, जिन्हें कुलदेवता और पवित्र माना जाता था. कई वन आश्रित समुदायों ने अन्य खतरनाक जानवरों की चिंता करते हुए उनके निवास स्थान की जानकारी गुप्त रखने लगे.

इस बीच, संथाल, मुंडा और कोल ने क्रमशः संथाल परगना, छोटानागपुर के पठार और कोल्हान के क्षेत्रों में औपनिवेशिक शासन और दिकु (बाहरी लोगों) के खिलाफ विद्रोह कर दिया. उन्होंने औपनिवेशिक सत्ता और आकाओं के खिलाफ विद्रोह में हूल और उलगुलान का नारा बुलंद किया. उन्होंने वन संसाधनों पर ब्रिटिश प्रतिबंधों को सांस्कृतिक अलगाव के रूप में देखा. उनका मानना था कि अगर उन्हें जंगल के साथ अपना रिश्ता बनाए रखने की अनुमति नहीं दी गई तो उनकी पहचान संकट में आ जाएगी.

प्रत्येक उग्र विद्रोह के बाद, औपनिवेशिक प्रशासन ने व्यावहारिक तरीकों और बल प्रयोग से इस प्रतिरोध पर नियंत्रण किया. व्यावहारिक रूप से, औपनिवेशिक शासन ने आदिवासियों की चिंताओं को दूर किया और वनों पर राज्य के एकाधिकार से जुड़े उनके अपने हितों की रक्षा के लिए विशेष कानून बनाए. वहीं दूसरी ओर, इसने वन संसाधनों पर अपना कब्जा बनाए रखने के लिए सामाजिक-आर्थिक मामलों में प्रशासक के रूप में अपनी भूमिका बरकरार रखी. इसका मतलब यह हुआ कि औपनिवेशिक प्रशासन ने उपायुक्त के कार्यालय के माध्यम से इन क्षेत्रों पर अपना कब्जा जारी रखा.

ब. प्रतिरोध का मुकाबला करने की औपनिवेशिक रणनीति

वनों पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त करने के अपने लक्ष्य को आगे बढ़ाने के लिए, औपनिवेशिक शासन ने न केवल कानून और वन्यजीव अधिकारियों का इस्तेमाल वन आश्रित समुदायों को विस्थापित और अधिकारों से बेदखल करने के लिए किया, बल्कि इस शोषण को सही ठहराने के लिए बड़े पैमाने पर झूठी कहानियां भी गढ़ीं. ये कहानियां विद्रोह के पहले और बाद - दोनों काल खंड में गढ़ी गईं. ये कहानियां अक्सर आदिवासी लोगों को रक्तपिपासु विद्रोहियों के रूप में चित्रित करती हैं जिनमें किसी भी प्रकार की राजनीतिक चेतना या तर्कसंगत सोच का अभाव होता है. औपनिवेशिक शासन के खिलाफ हथियार उठाने वाले समुदायों को लगातार 'विद्रोहियों' के रूप में गलत ठहराया गया था, जिन्होंने केवल उनके आवेग में आकर राज्य को चुनौती दी. इन कहानियों, जिसने इन लोगों को रक्तपिपासु, जंगली और असभ्य के रूप में प्रस्तुत किया, को सही ठहराने की कोशिशों ने ऐसे वन आश्रित समुदायों के अपराधीकरण को और भी वैध बना दिया. क्रूर और घातक बल का प्रयोग बड़े पैमाने पर हुआ था और संथाल परगना में हूल (1855), छोटानागपुर में उलगुलान (1899-1900), बस्तर में भूमकाल (1910), भील विद्रोह (1857-66) और पूर्णिया में संथाल विद्रोह (1938-1942) जैसे कई स्थानीय विद्रोहों को समुदायों की चिंताओं को दूर किए बिना दबा दिया गया.

सीटीए का अधिनियमन वन आश्रित समुदायों की आजीविका को आपराधिक बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था. इसे कई एसटी समुदायों द्वारा किए जा रहे सक्रिय प्रतिरोध की शुरुआत में भी पारित किया गया था. यह समुदायों द्वारा कुछ प्रजातियों के शिकार एवं जंगल में उनके आवास का पता लगाने का विरोध करने और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने संबंधी आंदोलनों को कुचलने का औजार था.

बाद में, वन संसाधनों पर अधिक नियंत्रण प्राप्त करने और युगों से जंगल में निवास करने वाले समुदायों को बेदखल करने के लिए वन संबंधी कानून लागू किए गए. समुदाय नए कानूनों से अनभिज्ञ थे और जंगल के अंदर अपनी गतिविधियों, जो उनकी आजीविका का जरुरी हिस्सा थे, के कारण नियमित रूप से कानून का उल्लंघन करते पाए जाते थे. इसके अलावा, 19वीं शताब्दी के दौरान, ब्रिटिश सरकार ने व्यावसायिक उपयोग के लिए बड़े पैमाने पर जंगलों का सफाया किया और वन आश्रित समुदायों को नए पौधारोपण संबंधी कार्यों में मजदूरी करने का आदेश दिया. इन परियोजनाओं का विरोध करने वाले समुदायों को अपराधी घोषित कर दिया गया.

वन संरक्षण की औपनिवेशिक रणनीति आजादी के बाद खत्म नहीं हुई. स्वतंत्रता के बाद की कई नीतियों और यहां तक कि वन प्रशासन के नए कानूनों में भी यही दृष्टिकोण और धारणाएं व्याप्त हैं. इस प्रकार, वन कानूनों के कारण कई वन आश्रित समुदायों के समक्ष निम्नलिखित कारणों से खान-पान की चीज़ों का गंभीर संकट पैदा किया:

अ. छोटे शिकार, जैसे मुर्गी, खरगोश, हिरण और बंदरों तक पहुंच का अभाव, जो शिकारी समुदायों के लिए मुख्य भोजन हुआ करते थे.
ब. छाल, जड़, कंद, मकई, पत्ते, फूल, बीज, फल, पौधों का रस, शहद, ताड़ी और अन्य वन उत्पादों तक पहुंच का अभाव, जो संग्रह करने वाले समुदायों के लिए पोषण का नियमित स्रोत थे.
स. जंगल स्थित तालाबों और नालों में मछली मारने पर रोक जो प्रोटीन का पारंपरिक स्रोत हुआ करता था.
द. पशुओं के लिए चरागाह की कमी के कारण मवेशियों की आबादी में गिरावट आई, जो कुछ शिकारी समुदायों के लिए दूध और मांस का मुख्य स्रोत हुआ करता था.

औपनिवेशिक सरकार ने वनों को परिसंपत्ति के रूप में देखना शुरू किया और तदनुसार इससे संबंधित बदलाव किए. इन परिवर्तनों में रेलवे, जहाज निर्माण जैसे विकासात्मक कार्यों के लिए लकड़ी के स्रोत के रूप में वनों का उपयोग शामिल था. बारिश चक्र पर वनों का प्रभाव, राजस्व और वन विभाग के बीच खींचतान, कृषि और उद्योग को प्राथमिकता दी गई थी और जंगल के भीतर और उसके बाहर रहने वाले दोनों समुदायों की जंगल तक पहुंच थी. शुरूआत में इसका मद्रास सरकार ने विरोध किया था, हालांकि उसकी हिचकिचाहट वन संरक्षण की चिंताओं से जुड़ी नहीं थी, बल्कि वन संसाधनों पर राजस्व विभाग का नियंत्रण ख़त्म खोने के डर से सामने आई थी. समुदाय के स्वामित्व वाले वन की अवधारणा की जगह वन विभाग के नेतृत्व वाले संरक्षण उपाय हावी हो गए थे. इसके अलावा, 1882 के मद्रास अधिनियम के तहत मद्रास प्रेसीडेंसी के वनों को आरक्षित वनों, आरक्षित भूमि और निजी वनों के रूप में वर्गीकृत किया गया था. इसलिए, ईंधन और चारा प्राप्त करने के लिए भूमि इस्तेमाल की जा सकती थी, लेकिन सामुदायिक स्वामित्व का कोई प्रावधान नहीं था. इन कदमों का विरोध हुआ लेकिन जमींदारों और राजस्व विभाग को सुरक्षा प्रदान कर इन चिंताओं को दरकिनार कर दिया गया. इसके अतिरिक्त, रेलवे और प्लाईवुड उद्योग

के लिए वन संसाधनों का दोहन किया गया, जिससे वनों का और ज्यादा क्षरण हुआ. इस अधिनियम के कारण जलावन के अत्यधिक उपभोग जैसे मुद्दों पर स्थानीय समुदायों और वन विभाग के बीच दरार पैदा हो गई. आखिरकार, संयुक्त वन प्रबंधन और वन आश्रित समुदायों के स्थानीय लोगों के बीच समझौता हुआ, जिसमें इन समुदायों से वन उपज के प्राप्त करने के बदले में वन की व्यावसायिक फसलों की रक्षा करने की अपेक्षा की गई थी.

स. आजाद भारत की सरकार

आज़ाद भारत की सरकार का मकसद निजी वनों का 'सर्वोपरि राष्ट्रीय आवश्यकता' के रूप में अधिग्रहण कर वन संसाधनों पर राज्य का स्वामित्व कायम करना था. डब्ल्यूपीए जैसे कानून ने अधिकारियों को जनजातियों की निगरानी करने, उनके शिकार संबंधी अधिकारों को कम करने और उन्हें अपने पारंपरिक व्यवसायों और सांस्कृतिक परंपराओं का पालन करने से रोकने वाली औपनिवेशिक विरासत को आगे बढ़ाने में मदद की. इस विरासत के खिलाफ समुदायों का संघर्ष आज भी जारी है. झारखंड के वन आश्रित समुदाय 2008 में सेंदरा त्योहार मनाने के लिए विरोध प्रदर्शन के लिए मजबूर हुए थे, जो शिकार और पेड़ों की पूजा से जुड़ा त्योहार है. सेंदरा एक धार्मिक त्योहार है और यह सरना पूजा के बाद अप्रैल-मई के महीनों में मनाया जाता है. यह एक सप्ताह तक चलने वाला त्योहार है जिसमें देवताओं, पूर्वजों, पारंपरिक हथियारों, जहेर और साल के पेड़ों की पूजा की जाती है (जिसे बहा या सरहुल के नाम से जाना जाता है). झारखंड रक्षा संघ ने 2008 में दलमा क्षेत्र में सांस्कृतिक अधिकारों के हनन के विरोध में आदिवासी मूलवासी सेंदरा सांस्कृतिक महारैली का आयोजन किया था. संरक्षण आधारित दृष्टिकोण और जन-केंद्रित दृष्टिकोण के बीच के अंतर के उदाहरण को अगर देखा जाए तो मुख्यधारा का समाज सेंदरा परंपरा को ठीक से समझ और स्वीकार नहीं कर पाया है. किसी को अपनी संस्कृति और परंपरा का पालन करने के अधिकार से वंचित करना सीधे तौर पर इन आदिवासी समुदायों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है, जिसकी गारंटी भारतीय संविधान द्वारा दी गई है. अनुच्छेद 25 नागरिकों को अपने धर्म को मानने, अभ्यास करने और प्रचार करने का अधिकार देता है.

वन विभाग के अधिकारी जंगलों में प्रवेश और गतिविधि करने से रोकने के लिए सीआरपीसी की धारा 144 लागू करते हैं, जिसके कारण अपने संस्कृति का पालन करने पर उनकी गिरफ्तारी होती है, उन्हें हिरासत में लिया जाता है और सजा होती है. झारखंड रक्षा संघ समाधान की मांग कर रहा है ताकि वे अपना त्योहार शांतिपूर्वक मना सकें. राज्य अभी भी वनों और उसकी उपज पर नियंत्रण रखता है और वर्षों से, उसने बहुत सारे वाणिज्यिक उद्योगों स्थापित करने, दुकान खोलने और वन संसाधनों के व्यापक दोहन की अनुमति दी है. वन उत्पादों के लिए वन पर राज्य का नियंत्रण जारी है, जिन्हें राज्य वन संसाधनों पर आधारित मिलों और व्यावसायिक उद्यमों को हस्तांतरित करता है. 1980-1990 के बीच, औपनिवेशिक काल से चलती आ रही प्रथाओं को खत्म करने के लिए संयुक्त वन प्रबंधन और वन संसाधनों के बढ़ते लोकतंत्रीकरण को अहमियत दी गई लेकिन विडंबना यह थी कि एक बार फिर इनके जरिए वन संसाधनों के व्यावसायीकरण को स्पष्ट रूप से बढ़ावा दिया गया.

वन आश्रित समुदायों के अधिकारों के मुकाबले वन्य जीवन संरक्षण का पक्ष लेने वाले कुछ कानूनों और नियामक प्राधिकरणों के बीच निरंतर खींचतान रहा है. इसका एक उदाहरण राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण (एनटीसीए) और वन अधिकार अधिनियम, 2006 के बीच का खींचतान है, जिसमें एनटीसीए ने 2017 में

एक परिपत्र जारी कर बाघों के आवास क्षेत्रों में वन अधिकारों पर रोक लगा दी थी. इसी तरह, डब्ल्यूपीए कानून निगरानी और औपनिवेशिक विरासत को बनाए रखता है.

निष्कर्ष

प्रकाशित दस्तावेजों की समीक्षा से पता चलता है कि एसटी और अन्य वन आश्रित समुदाय सदियों से शिकार और वन आधारित आजीविका पर निर्भर रहे हैं. उन्होंने अन्य गैर- वन आश्रित समुदायों के साथ संबंध स्थापित किए, जो यूरोपीय लोगों के आगमन तक कायम रहा. इस समीक्षा से यह भी सामने आता है कि अंग्रेजों द्वारा प्रस्तुत आख्यान से इतर, समुदायों और जंगल के बीच परस्पर-निर्भरता का संबंध था और यह आवश्यकता-आधारित था. इन समुदायों की सांस्कृतिक और धार्मिक - दोनों तरह की परंपराएं रही हैं, जो जंगल और वन्य जीवन के साथ उनके संबंधों को निर्धारित-संचालित करती हैं. औपनिवेशिक सरकार ने इस संबंध को जंगलों से प्राप्त होने वाले राजस्व को नियंत्रित और संग्रहित करने वाले कानूनों के माध्यम से बदल दिया. इसने उन समुदायों के जीवन और आजीविका को प्रभावित किया जो इन वनों का प्रबंधन करते थे और इन पर निर्भर थे. इस वजह से इन समुदायों ने भारत के विभिन्न हिस्सों में अंग्रेजों का प्रतिरोध किया और उनके खिलाफ विद्रोह किया. इसके जवाब में अंग्रेजों ने न केवल अत्याचार किया, बल्कि सीटीए जैसे कानून पारित करके इन जनजातियों को अपराधी भी घोषित किया. इसके बाद आइएफ़ए लागू हुआ, जिसके माध्यम से सरकार ने वस्तुतः देश के सभी वनभूमि पर नियंत्रण कर लिया. जिसके बाद, स्थानीय समुदायों का प्रतिरोध और भी उग्र हो गया और कई समुदायों ने औपनिवेशिक सरकार से अपने अधिकारों को हासिल किया.

आइएफ़ए में अंतिम बार 1927 में संशोधन किया गया था और देश में वन प्रशासन आज तक मूल रूप से इसी पर आधारित है. स्वतंत्रता के बाद की सरकारों ने पहले कुछ वर्षों तक औपनिवेशिक नीतियों को जारी रखा. डब्ल्यूपीए के पारित होने के 25 साल बाद उत्पादन उन्मुख वानिकी से 'संरक्षण' की दिशा में बदलाव आया. दस्तावेजों से पता चलता है कि, इन वर्षों के दौरान राज्य और केंद्र सरकारों के बीच वनों के नियंत्रण के मुद्दे पर खींचतान रही और वनों की सुरक्षा और पहुंच के लिए आंदोलनों हुए. लेकिन पहले की तरह ही वनों पर निर्भर समुदायों को लगातार दरकिनार किया जाना जारी रहा और उनके अधिकारों को कुचला गया. डब्ल्यूपीए के पारित होने से वन्यजीवन के लिए संरक्षित क्षेत्र बन गए और जानवरों के शिकार पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया गया. दस्तावेज बताते हैं कि इस अधिनियम ने शिकार और वन आधारित आजीविका के लंबे इतिहास को ध्यान में रखे बिना समुदायों की आजीविका का अपराधीकरण किया. जंगलों के माध्यम से उनके जीवन और आजीविका को नियंत्रित करने वाली सरकारों के खिलाफ प्रतिरोध जारी रहा. यह 1990 में संयुक्त वन प्रबंधन की नीति लागू करने के रूप में हुए बदलाव और 1996 में पेसा के पारित होने के रूप में परिलक्षित हुआ. एसटी और अन्य पारंपरिक वन-वासी समुदायों के संघर्ष और प्रतिरोध की परिणति 2006 में एफआरए पारित होने के रूप में हुई. इन कानूनों के माध्यम से राज्य ने 'ऐतिहासिक अन्याय' को स्वीकार किया और यह भी माना कि पारंपरिक वन आश्रित समुदाय जंगल के मुख्य संरक्षक हैं. एफआरए के पारित होने के साथ, यह मान लिया गया था कि डब्ल्यूपीए के माध्यम से समुदायों का जो अपराधीकरण हुआ था वह रूक जाएगा. लेकिन इसके लागू होने के 16 साल बाद भी, इन समुदायों के अधिकारों को मान्यता नहीं मिल पाई है और इसके बजाय राज्य ने इस कानून को कागजी शेर बनाकर इसे बेअसर करने के तरीके खोज लिए हैं. जिसके कारण वन विभाग द्वारा डब्ल्यूपीए के जरिए वन आश्रित समुदायों का अपराधीकरण बेरोकटोक जारी है.

5. वन्यजीव संरक्षण संबंधी पुलिस कार्यप्रणाली

राज्य पुलिस बलों की प्राथमिक जिम्मेदारी अपराध की जांच और रोकथाम करना और कानून-व्यवस्था बनाए रखना होता है. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के 'क्राइम इन इंडिया' शीर्षक के तहत दर्ज आधिकारिक आंकड़े कानून-व्यवस्था बनाए रखने संबंधी कार्य की व्यापकता के बारे में बताते हैं जो पुलिस के काम का बड़ा हिस्सा है. पर्यावरण से संबंधित अपराधों के तहत सबसे ज्यादा मामले डब्ल्यूपीए के तहत दर्ज नहीं होते हैं, ऐसे ज्यादातर मामले अक्सर या तो भारतीय वन अधिनियम, 1927 (आइएफ़ए), ध्वनि प्रदूषण नियम या सिगरेट और अन्य तंबाकू उत्पाद (व्यापार और वाणिज्य, उत्पादन, आपूर्ति और वितरण के विज्ञापन और विनियमन का निषेध) कानून, 2003 के तहत दर्ज किए जाते हैं. 2021 में, डब्ल्यूपीए के तहत दायर 579 मामलों में से 12 मामले मध्य प्रदेश (जहां 25.14% भौगोलिक क्षेत्र वनाच्छादित है) में दर्ज किए गए. इन आंकड़ों में वन विभाग द्वारा दायर 114 मामलों शामिल नहीं हैं. फिर भी यह अध्याय पुलिस कार्रवाई की पड़ताल करने के लिए गिरफ्तारी के रुझानों की छानबीन करता है जो वन विभाग द्वारा किए जाने वाले अभियोजन के पूरक और विकल्प - दोनों के रूप में मौजूद रहा है.

यह विश्लेषण 2011 से 2020 तक की 10 वर्षों की अवधि के लिए एमपी के पुलिस विभाग द्वारा पूरे राज्य के लिए सार्वजनिक रूप से उपलब्ध कराए गए आंकड़ों पर आधारित है. यह अध्याय बताता है कि गिरफ्तारियां कहां हुईं, किन अपराधों के लिए हुईं और गिरफ्तार लोग किस समुदाय के थे.

I. आंकड़ों के बारे में

2011 से 2020 के बीच मप्र के 38 जिलों में कुल 780 गिरफ्तारियां दर्ज की गईं. इस अध्याय से पता चलता है कि डब्ल्यूपीए के कथित उल्लंघन के लिए व्यक्तियों को गिरफ्तार करने के मामलों में जिलों और पुलिस स्टेशनों के बीच गिरफ्तार करने के तरीकों में भारी असमानता है. अध्ययन किए गए वर्षों में गिरफ्तारियां असमान हैं यानी कि कुछ वर्षों के दौरान ऐसी ज्यादातर गिरफ्तारियां हुईं. इन 10 वर्षों की अवधि में हुईं गिरफ्तारियों में से वर्ष 5% से कम गिरफ्तारियां 2015-2016 में हुईं और 2018 में 20% गिरफ्तारियां दर्ज की गईं. इसके अतिरिक्त, जैसा कि नीचे दिखाया गया है, वर्ष 2017 से 2020 के बीच की अवधि में आधे-से-अधिक गिरफ्तारियां (53.6%) हुईं.

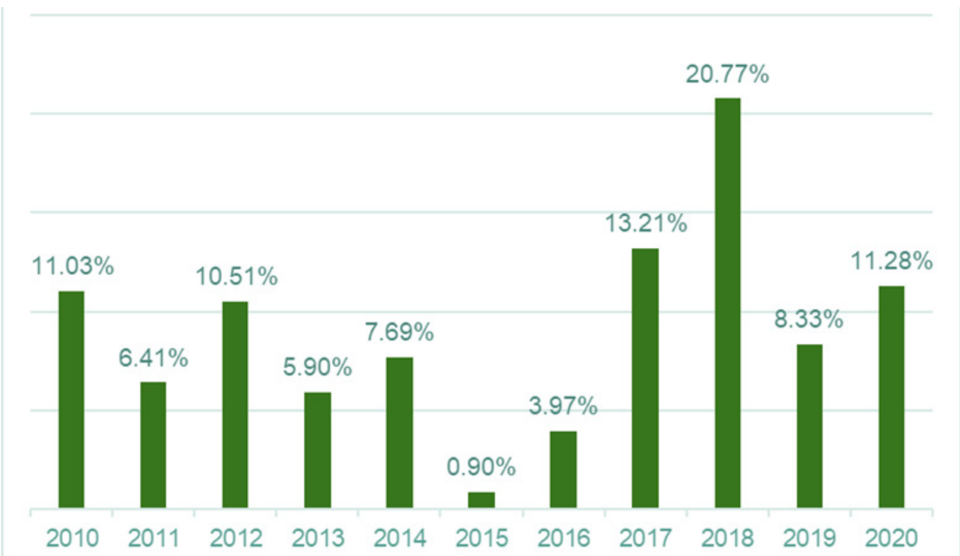

चित्र 1.1: मध्य प्रदेश के 38 जिलों में वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम के तहत 2010 से 2020 के बीच हुई गिरफ्तारियों की कुल संख्या.

यहां तक कि अध्ययन किए गए जिलों में भी असमानताएं मौजूद हैं. जबकि कुछ जिले डब्ल्यूपीए का व्यापक इस्तेमाल करते हैं, अन्य नहीं करते हैं. इस डेटा सेट के मुताबिक सबसे ज्यादा गिरफ्तारियां सिंगरौली (20%) और सीधी (9.23%) जिले में हुई हैं. इन जिलों के बाद सीहोर (5.64%), बालाघाट (5.51%) और विदिशा (4.36%) जिले आते हैं. करीबी विश्लेषण से यह सामने आता है कि जिलों में गिरफ्तारी करने के लिए डब्ल्यूपीए के इस्तेमाल संबंधी यह असमानता पुलिस थानों के स्तर पर भी जारी रहती है.

II. जिलावार गिरफ्तारी पर करीबी नजर

इन आंकड़ों के गहन अध्ययन से पता चलता है कि जिला स्तर पर पुलिस कार्यप्रणाली में असमानता है और ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ जिलों में पुलिस ने लोगों को गिरफ्तार करते हुए अपनी विवेकाधीन शक्ति का दुरुपयोग किया.

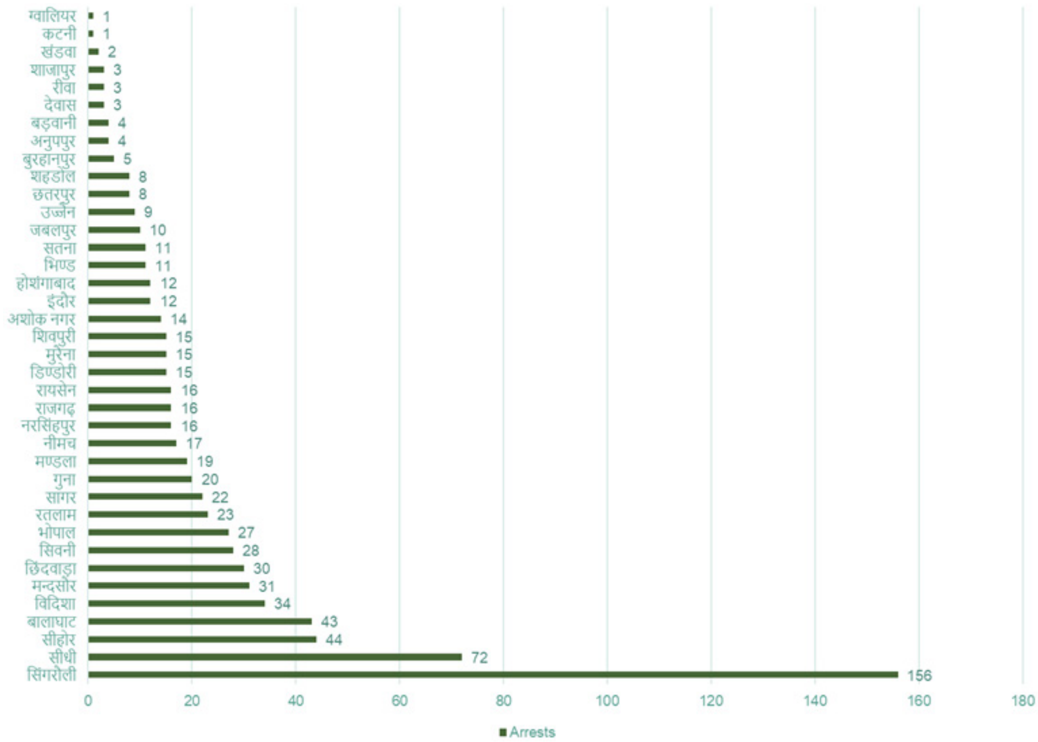

अ. गिरफ्तारी के थानावार आंकड़े

डब्ल्यूपीए के असमान इस्तेमाल का यह तरीका पुलिस थानों के स्तर पर भी जारी है. कुछ पुलिस स्टेशनों ने पूरे डेटा सेट में एक समय अवधि (एक महीने या एक वर्ष के भीतर) में ही गिरफ्तारियां दर्ज कीं. सिंगरौली में, जहां बहुत अधिक गिरफ्तारियां की गईं, सभी गिरफ्तारियों केवल दो पुलिस थानों द्वारा की गईं. उदाहरण के लिए, अकेले गड़वा पुलिस स्टेशन में सबसे अधिक गिरफ्तारियां हुईं. यहाँ हुईं 123 (कुल 780) गिरफ्तारियां 2011 से 2020 के बीच की गई कुल गिरफ्तारी का 15.59% थीं. दूसरी ओर, उसी जिले के चितरंगी पुलिस स्टेशन द्वारा 2011 और 2020 के बीच केवल 33 गिरफ्तारियां की गईं, जो कुल गिरफ्तारियों का 4.18% है.

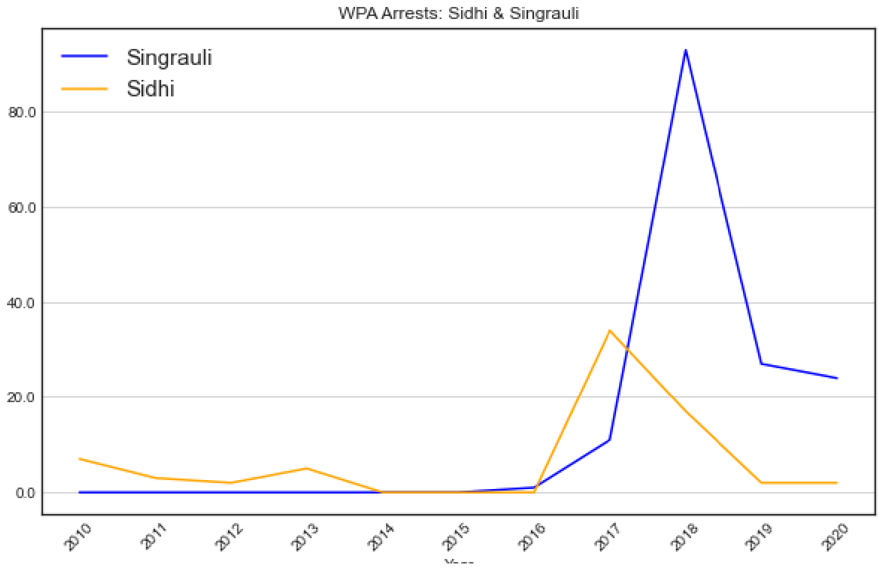

चित्र 1.2: सिंगरौली और सीधी जिले में 2010 से 2020 के बीच गिरफ्तारियों की संख्या

यह संभव है क्योंकि गड़वा के अधिकार क्षेत्र में सोन घड़ियाल वन्यजीव अभयारण्य का एक बड़ा क्षेत्र आता है. हालाँकि, भौगोलिक विभेद से इतर, हमने 2018 में इन गिरफ्तारी के आंकड़ों में एक बड़ा उछाल पाया. गड़वा में सबसे अधिक गिरफ्तारियां 2018 (73) में हुईं, इसके बाद 2019 में 26 गिरफ्तारियां हुईं; चितरंगी में भी गिरफ्तारियों की सबसे अधिक संख्या 2018 (20) में थी, लेकिन 2019 में केवल 1 गिरफ्तारी हुई. इन पुलिस स्टेशनों के बारे में अधिक जानकारी के बिना, वर्तमान में, यह आंकड़ा एक ही जिले के भीतर पुलिस कार्यप्रणाली की असमान प्रकृति को सामने लाता है.

सीधी में, जो गिरफ्तारी के मामले में दूसरे स्थान पर है, 10 साल की अवधि में सभी गिरफ्तारियां आठ पुलिस थानों द्वारा की गईं. हालांकि, इस जिले में सबसे ज्यादा गिरफ्तारियां करने वाले सीधी कोतवाली पुलिस स्टेशन ने इस अवधि में कुल 23 लोगों को गिरफ्तार किया, इनमें से 21 लोगों को 2017-18 में गिरफ्तार किया गया था. ज्यादा गिरफ्तारियां करने वाले अन्य दो पुलिस स्टेशनों में बहरी (15 व्यक्तियों) और अमिलिया (11 व्यक्तियों) शामिल थे और इन थानों द्वारा भी 2017-18 में ये गिरफ्तारियां की गईं.

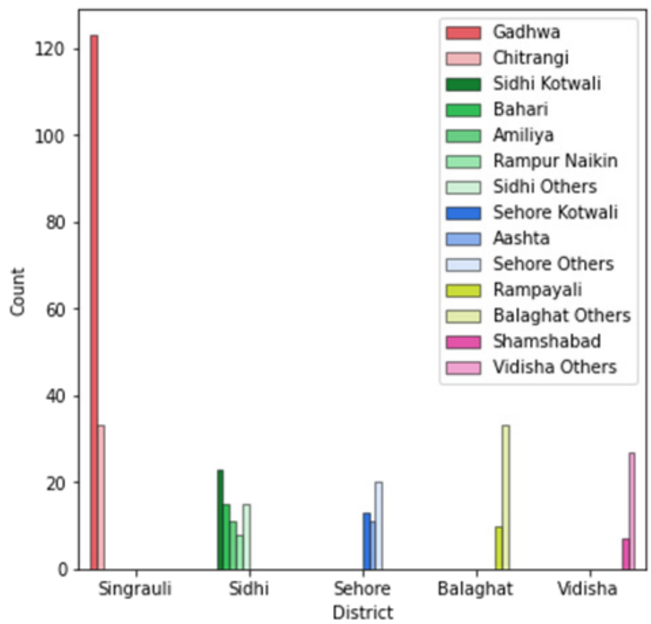

चित्र 1.5: उपर्युक्त जिलों में गिरफ्तारियों की संख्या

III. डब्ल्यूपीए अधिनियम 1972 और अन्य प्रासंगिक अधिनियमों के तहत दर्ज अपराध

आंकड़ों का विश्लेषण करने के बाद, हमने पाया कि डब्ल्यूपीए के अलावा, पुलिस अक्सर गिरफ्तारी के लिए पर्यावरण संरक्षण अधिनियम (ईपीए), 1986; भारतीय दंड संहिता, 1860 (आईपीसी); और खान और खनिज (विकास का विनियमन) अधिनियम, 1957 (एमएमए) के विभिन्न प्रावधानों का उपयोग करती है. 67.5% गिरफ्तारियों में डब्ल्यूपीए के साथ-साथ इन कानूनों का इस्तेमाल किया गया. इसके अलावा, हमने गिरफ्तारी के समय पुलिस द्वारा तय किए गए विभिन्न अपराधों का भी अध्ययन किया.

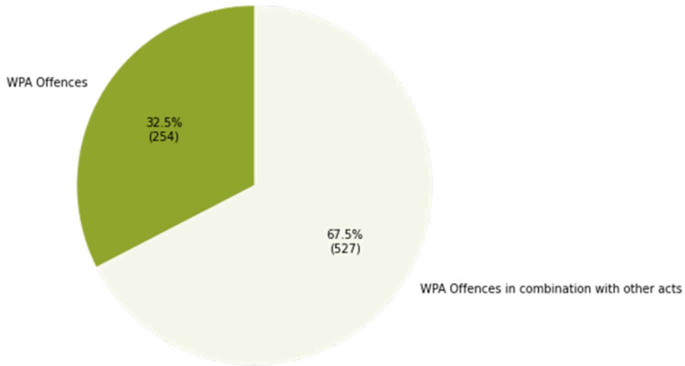

चित्र 1.6: केवल डब्ल्यूपीए के तहत गिरफ्तारी का प्रतिशत और डब्ल्यूपीए के साथ-साथ अन्य कानूनों के तहत गिरफ्तारी का प्रतिशत दर्शाने वाला पाई चार्ट

अ. डब्ल्यूपीए का विशेष इस्तेमाल

डब्ल्यूपीए के तहत, धारा 9 और 51 का सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाता है. इन दो धाराओं के तहत कुल मिलाकर 45 गिरफ्तारियां (5.77%) की गईं. डब्ल्यूपीए की धारा 9 अधिनियम की चार अनुसूचियों में सूचीबद्ध जंगली जानवरों का शिकार प्रतिबंधित करती है. धारा 51 अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए अलग-अलग प्रकार के दंड निर्धारित करती है. एक साथ इस्तेमाल किए जाने पर ये शिकार पर प्रतिबंध लगाते हैं और दंड निर्धारित करते हैं.

डब्ल्यूपीए के तहत हुए अपराधों के लिए, धारा 9 और 51 के साथ-साथ धारा 39 का सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाता है. इस तीनों धाराओं का इस्तेमाल कर कुल 18 गिरफ्तारियां (2.31%) की गईं. धारा 39 के अनुसार कोई भी मृत या मारा गया जंगली जानवर सरकारी संपत्ति है. इस धारा का मकसद जंगली जानवरों, इनसे बने सामान और इनके सिर, खाल या शरीर के किसी अन्य अंग के व्यापार और वाणिज्य को रोकना है.

1.92% गिरफ्तारियों (15 मामलों) में, पुलिस ने धारा 9, 39, 48A, 51(1), 52, और 57 का एक साथ इस्तेमाल किया. धारा 48A वन्यजीवों के परिवहन को प्रतिबंधित करती है; धारा 52 प्रयास और प्रलोभन के लिए दंड निर्धारित करती है; और धारा 57 बेगुनाही साबित करने का भार अभियुक्तों पर डालता है जब उनके "कब्जे, हिरासत या नियंत्रण में कोई बंदी पशु, पशु से बने सामान, मांस, ट्रॉफी (सिर, खाल या पशु शरीर के किसी अन्य अंग), असंसाधित ट्रॉफी, निर्दिष्ट पौधे, या उसके भाग या व्युत्पन्न पाए जाते हैं." गिरफ्तारी के समय धारा 57 को जोड़ना संदिग्ध है क्योंकि यह दंडात्मक प्रावधान नहीं है, बल्कि वन्यजीव

अपराधों के अभियोजन में आपराधिक प्रक्रिया का हिस्सा है.

1.79% गिरफ्तारियों (14 मामलों) में, पुलिस ने धारा 5, 9 और 51 के तहत मामले दर्ज किए थे. गिरफ्तारी के समय डब्ल्यूपीए की धारा 5 का इस्तेमाल गलत है क्योंकि यह अधिनियम के तहत प्रत्यायोजित अधिकारियों की पहचान करती है और आपराधिक कृत्य के बारे में नहीं बताती है.

पुलिस ने भी 12 मामलों (1.54%) में केवल धारा 51 का इस्तेमाल किया, जिससे यह डब्ल्यूपीए का सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाला प्रावधान बन गया. डब्ल्यूपीए के व्याख्या के अनुरूप है जहां धारा 51 अधिनियम के तहत विभिन्न अपराधों के लिए विभिन्न प्रकार के दंड और जुर्माना निर्धारित हैं. वास्तव में, पूरे डेटा सेट में धारा 51 के उपयोग के केवल 23 उदाहरणों में, पुलिस ने उप-धारा (या तो 51(1) या 51(1ए)) का उल्लेख किया. यहां तक कि धारा 51(1), जो 'अधिनियम के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करने' वाले को दंडित करती है, की व्याख्या अस्पष्ट है; धारा के नियम केवल राष्ट्रीय उद्यानों में सजा में बढ़ोतरी करते हैं और इसके तहत सजा की तीन श्रेणियों शामिल की गई हैं. धारा 51 का व्यापक उपयोग संदेह पैदा करता है और कथित आपराधिक कृत्य पर निर्णय लेने के लिए पुलिस को बहुत अधिक विवेकाधीन अधिकार देता है.

ब. डब्ल्यूपीए के साथ-साथ अन्य कानूनों का इस्तेमाल

कई गिरफ्तारियों में ज्यादा गंभीर आरोपों के तहत मामला दर्ज करने के लिए डब्ल्यूपीए के साथ-साथ आईपीसी और अन्य कानूनों का इस्तेमाल किया गया. हमने पाया कि कुल गिरफ्तारियों में से 65 गिरफ्तारियां (8.33%) डब्ल्यूपीए के साथ पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 15; आईएफए, 1927 की धारा 2, 41 और 52; आईपीसी, 1860 की धारा 34, 379 और 414 और खान और खनिज (विकास का विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 4 और 21 में तय अपराधों के आरोपों आधार पर भी की गईं. आईएफए की धारा 2 इस कानून की व्याख्या करने वाली धारा है और यह कोई अपराध या जुर्माना निर्धारित नहीं करता है. ऐसे में यह स्पष्ट नहीं है कि पुलिस ने गिरफ्तारी के लिए इस प्रावधान का इस्तेमाल क्यों किया.

हमने पाया कि 1.41% (11 मामले) गिरफ्तारियां आईपीसी की धारा 201, 304 (II) और डब्ल्यूपीए की धारा 9 और 52 के तहत की गईं. इसी तरह, आर्म्स एक्ट की धारा 25 और 27 का इस्तेमाल अन्य 1.41% गिरफ्तारियों में डब्ल्यूपीए की धारा 9 और 51 के साथ किया गया.

इसके अतिरिक्त, हमने देखा कि जनप्रतिनिधित्व कानून (आरपीए), यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम (पोक्सो), मोटर वाहन अधिनियम (एमवीए), एमपी उत्पाद शुल्क अधिनियम और कई अन्य कम महत्व के कानूनों के तहत कई मामले दर्ज किए गए थे. पहली नज़र में, आरपीए और पोक्सो सहित इनमें से कई कानून तार्किक रूप से वन्यजीव अपराध से जुड़े नहीं हैं. ऐसे में ज्यादा जानकारी के बिना इन गिरफ्तारियों संबंधी रिकॉर्ड पर टिप्पणी करना संभव नहीं है. ऐसा लगता है कि खास अपराधों को अधिक गंभीर और गैर-जमानती बनाने के लिए उक्त कानूनों का भी इस्तेमाल किया गया.

डब्ल्यूपीए की धारा 51 अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित गिरफ्तारी

दिशानिर्देशों के दायरे में आती है, जिसमें पुलिस को उन व्यक्तियों को गिरफ्तार नहीं करने का निर्देश दिया गया है, जहां निर्धारित अधिकतम सजा सात साल के बराबर या उससे कम है. आम तौर पर, गिरफ्तारी के समय विभिन्न कानूनों और प्रावधानों के अनियंत्रित उपयोग से पुलिस को ज्यादा दंड वाले अपराधों के तहत मामला दर्ज कर इन दिशानिर्देशों को दरकिनार करने का मौक़ा मिलता है.

IV. गिरफ्तार व्यक्तियों की जाति या समुदाय संबंधी विवरण

यह कहा जा सकता है कि गिरफ्तारी के विवरणों में अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों की ज्यादा संख्या अनुमानित थी क्योंकि वन आश्रित समुदायों में मुख्य रूप से इनकी संख्या ज्यादा है. फिर भी यह साफ़ नहीं है कि क्या गिरफ्तारियां सिर्फ वन्य क्षेत्रों में की गईं और इसलिए, गिरफ्तारी के रुझानों के आधार पर विश्लेषण करते हैं. हमने पाया कि गिरफ्तार किए गए लोगों में से लगभग 29.5% लोग किसी-न-किसी उत्पीड़ित जाति समुदाय के थे. हमारे विश्लेषण के अनुसार, कुल गिरफ्तार लोगों में से 11% अभियुक्त अनुसूचित जनजाति, 3.6% अनुसूचित जाति, 9.5% अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी मुस्लिम सहित), 2.3% खानाबदोश जनजाति-विमुक्त जनजाति और 3% संभवतः सीमांत समुदायों से थे (उपनाम कम-से-कम दो उत्पीड़ित जाति समुदायों द्वारा विशेष रूप से उपयोग किए गए और कोई उत्पीड़क जाति नहीं शामिल है).

इस डेटा सेट के एक बड़े हिस्से (29%) का किसी जाति या समुदाय के आधार पर वर्गीकरण नहीं किया जा सका क्योंकि पुलिस ने अपने रिकॉर्ड में गिरफ्तार व्यक्ति के उपनाम या जाति का विवरण प्रदान नहीं किया. साथ ही 3% आंकड़े अवर्गीकृत रहे क्योंकि उपनाम के तौर पर कुमार और भारती दर्ज किए गए थे जो किसी भी श्रेणी में नहीं पाए गए. संभवतः 31% से अधिक सामान्य श्रेणी (अर्थात् उत्पीड़ित और उत्पीड़क जाति समुदायों दोनों द्वारा उपयोग किए जाने वाले अंतिम नाम) और 7% सामान्य श्रेणी से थे.

रिकॉर्ड में सबसे अधिक पाए जाने वाले उपनाम सिंह, यादव, कोल, खान, केवट, और शाह थे, जो क्रमशः 46, 32, 31, 29, 15 और 10 बार दर्ज मिले. इन उपनामों में से, सिंह, खान और शाह सभी विभिन्न जाति श्रेणियों के व्यक्तियों द्वारा उपयोग किए जाते हैं.

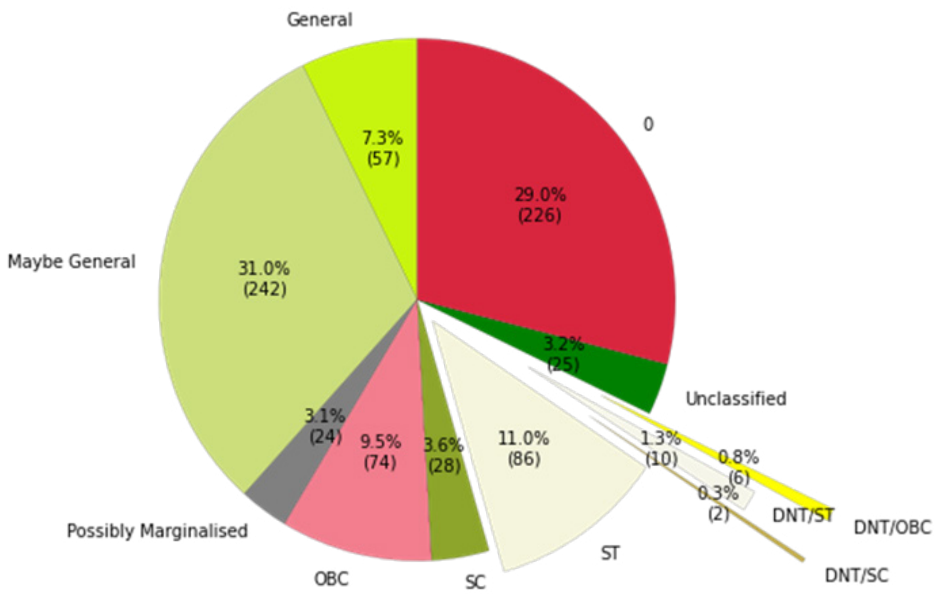

चित्र 1.7: गिरफ्तार व्यक्तियों की जाति का प्रतिशतवार आंकड़ा

जनगणना के आंकड़े, जो राज्य के अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की आबादी का जिलेवार विवरण उपलब्ध कराते हैं, डेटा को अधिक प्रासंगिक बनाने में मदद कर सकते हैं. 2011 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार, अनुसूचित जाति की उच्च आबादी वाले शीर्ष पांच जिले उज्जैन, दतिया, टीकमगढ़, शाजापुर और छतरपुर हैं और हमारे डेटा सेट में इन जिलों से संबंधित कोई आंकड़े नहीं हैं. अन्य जिलों की कुल जनसंख्या और अनुसूचित जाति की आबादी की तुलना में, हमने पाया कि डिंडोरी, ग्वालियर, अनूपपुर और भोपाल जिलों में अनुसूचित जाति के गिरफ्तार व्यक्तियों की संख्या तुलनात्मक रूप से अधिक थी क्योंकि इन जिलों में हुई सभी गिरफ्तारियां में से इस समुदाय से हुई गिरफ्तारी का प्रतिशत क्रमशः 26.6%, 100%, 25% और 18.52% था.

इसी तरह अलीराजपुर, झाबुआ, बड़वानी, डिंडोरी और मंडला जिले मप्र के उन शीर्ष पांच जिलों में शामिल हैं जहाँ कुल आबादी में अनुसूचित जनजाति की आबादी का प्रतिशत ज्यादा है. मंडला में, हालांकि अनुसूचित जनजाति की आबादी 57.9% है लेकिन कुल गिरफ्तार लोगों में से इन समुदायों की प्रतिशत 68.4% है. इसके अतिरिक्त, हमने पाया कि शहडोल से गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों में से 62.5% (पांच व्यक्ति) अनुसूचित जनजाति के थे जबकि इस जिले में अनुसूचित जनजाति की आबादी केवल 44.7% है. ये आंकड़े गिरफ्तारी डेटा सेट में अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों के अधिक प्रतिनिधित्व को दर्शाते हैं.

इसके अलावा, हमने पाया कि जबलपुर में गिरफ्तार लोगों में से 70% (सात व्यक्ति) संभवतः सीमांत श्रेणी के थे. होशंगाबाद में गिरफ्तार लोगों में से 66.67% (आठ व्यक्ति) संभवतः सामान्य श्रेणी से थे. सतना जिले में, गिरफ्तार लोगों में से 54.55% (छह व्यक्ति) ओबीसी थे. किसी भी डीएनटी श्रेणी में गिरफ्तारियों का उच्च प्रतिशत दर्ज करने वाला उज्जैन एकमात्र जिला था. इस कानून के तहत उज्जैन जिले से हुई कुल नौ गिरफ्तार लोगों में से चार डीएनटी/एसटी समुदायों (44.4%) से और 1 डीएनटी/एससी समुदाय (11.1%) से थे.

निष्कर्ष

हालांकि, गिरफ्तारी के आंकड़े राज्य में हुई कुल गिरफ्तारियों की कुल संख्या की तुलना में अधिक नहीं हैं और अलग-अलग वर्षों एवं जिलों में हुई गिरफ्तारियों की संख्या अलग-अलग हैं. ये आंकड़े कुछ दिलचस्प रुझानों को सामने रखते हैं. कुछ जिलों और कुछ पुलिस स्टेशनों में 2017 के बाद अन्य की तुलना में डब्ल्यूपीए के तहत मुकदमा चलाने की प्रवृत्ति अधिक पाई गई. डब्ल्यूपीए के साथ-साथ अन्य कानूनों का उपयोग पुलिस की विवेकाधीन शक्ति के इस्तेमाल की चिंताजनक प्रवृत्ति की ओर इशारा करता है, जिससे जमानत प्राप्त करना और अन्य राहत उपाय प्रभावित होते हैं. यहां तक कि, जिन आरोपों के लिए सजा 7 साल से कम थी, वहां भी गिरफ्तारी संबंधी दिशा-निर्देशों का पर्याप्त अनुपालन नहीं किया गया. डेटा सेट के आंकड़ों के बड़े हिस्से को किसी विशेष समुदाय के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सका, लेकिन वर्गीकृत किए गए आंकड़े बताते हैं कि 6 जिलों में उत्पीड़ित समुदायों के आरोपी व्यक्तियों की संख्या अधिक है जो कि डब्ल्यूपीए के तहत पुलिस की कार्यप्रणाली संबंधी अहम रुझानों को सामने रखता है. पुलिस स्टेशनों और जिलों के स्थानीय संदर्भों के आधार पर और गहन विश्लेषण से इन निष्कर्षों के ज्यादा स्पष्ट होने की संभावना है.

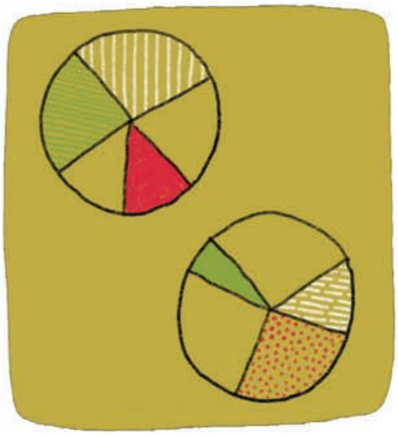

6. एफआईआर और अपराधीकरण के विवरण

यह अध्याय मध्य प्रदेश में डब्ल्यूपीए के तहत दायर की गई प्राथमीकियों (एफआईआर) का अध्ययन करता है ताकि मामले दर्ज करने के तरीके का विश्लेषण किया जा सके. यह विश्लेषण इस पर प्रकाश डाल सकता है कि क्या पुलिस द्वारा उपर्युक्त कानूनों के प्रक्रियाओं के कार्यान्वयन में गैर-न्यायिक तरीके अपनाए गए और क्या विशेष उत्पीड़ित समुदायों का बहुत ज्यादा अपराधीकरण हुआ.

वन विभाग द्वारा दर्ज एफआईआर और इसके दस्तावेजों के विश्लेषण से, यह देखा जा सकता है कि विभाग के लिए मुखबिर कथित मामलों से संबंधित प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का तात्कालिक जरिया बन गए हैं.

I. शिकार संबंधी मामले

क. किसे अपराधी बनाया जा रहा है?

इस अध्याय के तहत अध्ययन किए गए 34 एफआईआर में 111 अभियुक्तों के खिलाफ मामला दर्ज किया गया. इनमें से 26 एफआईआर में आरोपी व्यक्तियों की संख्या दो से पांच तक थी. कुछ एफआईआर में एक आरोपी को गिरफ्तार किया गया, लेकिन केवल एक मामले में आरोपी व्यक्तियों की संख्या 10 से अधिक थी. आरोपी व्यक्तियों में 34 एसटी और 13 एससी श्रेणी से थे. जबकि 5 व्यक्ति सामान्य, 9 ओबीसी और 3 विमुक्त जनजाति श्रेणी से थे. कुछ अभियुक्तों का जाति स्पष्ट नहीं थी, इनमें से 31 संभवतः सामान्य श्रेणी, नौ हाशिए के अन्य समुदाय और 5 व्यक्ति एक विशेष समुदाय से संबंधित थे.

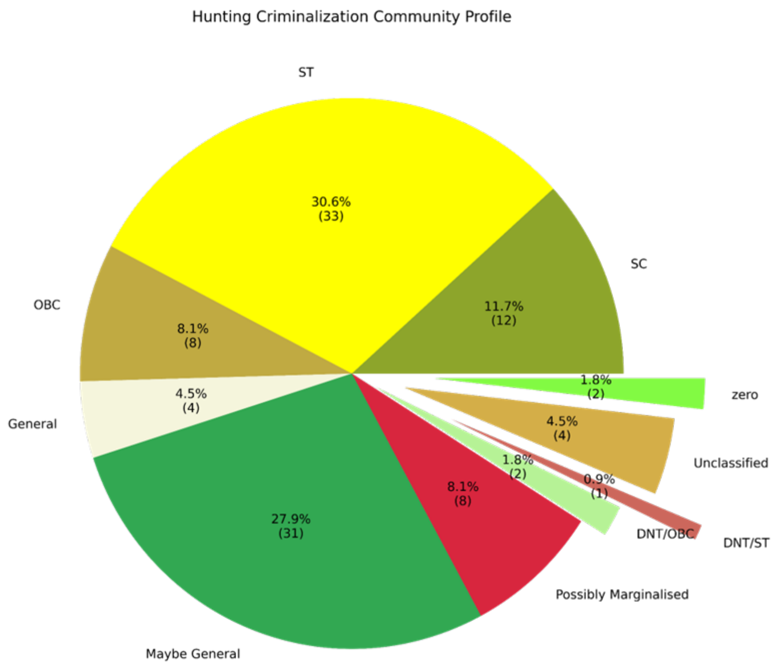

चित्र 2.क: जिन व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई थी, उनकी जाति का प्रतिशतवार चित्रण

ख. अपराध के बारे में

जिन 34 एफआईआर का हमने अध्ययन किया, उनमें से अधिकांश अपराध जंगली जानवरों के शिकार और व्यापार से संबंधित हैं. पुलिस ने अपराध के छह घंटे के भीतर 22 प्राथमिकी दर्ज कीं और शेष 12 प्राथमिकी अपराध के छह से बारह घंटे के भीतर दर्ज की गईं.

अध्ययन किए गए 34 एफआईआर में से 20 कथित घटनाएं सार्वजनिक स्थानों, 9 प्रतिबंधित वन क्षेत्रों और 5 घर या निजी स्थानों पर हुईं. गुना जिले के तीनों मामले प्रतिबंधित वन क्षेत्र में हुई घटनाओं से संबंधित थीं.

पुलिस ने 34 में से 23 मामलों में धारा 9 एवं 51 के तहत मामले दर्ज किए और 18 मामलों में धारा 9 एवं 39 का इस्तेमाल किया.

पुलिस को विभिन्न स्रोतों से कथित घटनाओं के बारे में पता चला. पुलिस को गश्त के दौरान दो मामले, वन विभाग से प्राप्त शिकायतों से तीन मामले, आम नागरिक शिकायतों से तीन मामले और पुलिस शिकायत से एक मामले की जानकारी मिली. लेकिन अधिकांश मामले, यानी 34 में से 25 (हमारे नमूने का 73%) की जानकारी पुलिस को मुखबिरों से प्राप्त हुई.

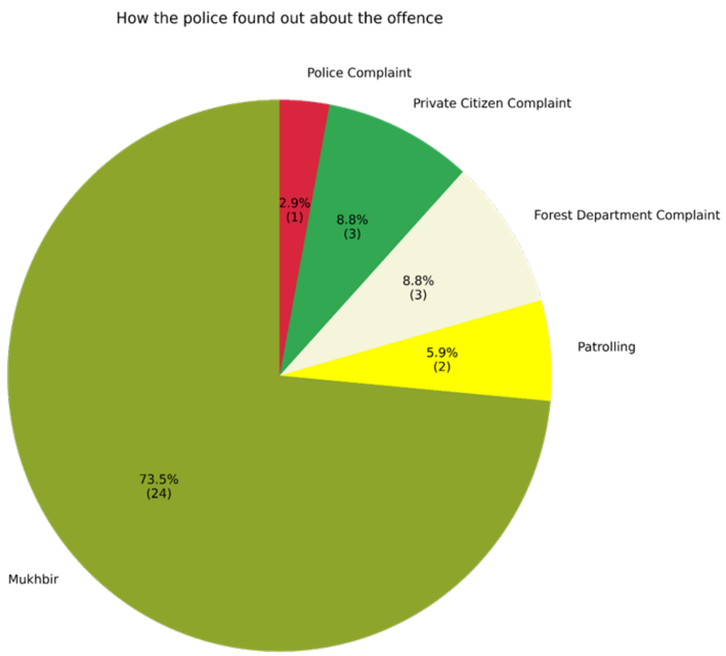

चित्र 2.ख: शिकार और व्यापार से संबंधित अपराधों की सूचना के स्रोत का प्रतिशतवार विवरण

ग. परिणाम

कुल 111 अभियुक्तों में से 79 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया और 13 व्यक्ति पुलिस हिरासत से भाग गए. शेष 19 व्यक्तियों के बारे में यह स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं थी कि उन्हें गिरफ्तार किया गया या नहीं. एफआईआर में आरोपी व्यक्तियों को जमानत दिए जाने का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं था. इसके अलावा, शिकार के कुल 34 मामलों में से नौ मामलों में वन विभाग भी शामिल था.

पुलिस ने डब्ल्यूपीए के तहत कई तरह के जानवरों, जिंदा या इसके अंगों, को जब्त किया. ऐसे कुल 29 उदाहरण में से अठारह पशु अनुसूची 1; दो जानवर अनुसूची III और एक अनुसूची IV से संबंधित थे. इन प्राथमीकियों में अधिनियम की अनुसूची I के तहत संरक्षित तेंदुआ, पैंगोलिन और मोर से संबंधित क्रमशः

9, 5 और 4 मामले दर्ज किए गए थे. इसी तरह अनुसूची III के तहत संरक्षित साँप, हिरन, भेडकी और चीतल से संबंधित क्रमशः 4, 3, 1 और 1 मामले दर्ज किए गए. साथ ही जलमुर्गी और कछुआ से भी संबंधित एक-एक मामला था, जो अनुसूची IV के तहत संरक्षित हैं.

एफआईआर से पता चलता है कि पुलिस ने जानवरों के अंगों के अलावा अन्य सामान भी जब्त किया है. इनमें 35 हथियार, 14 वाहन, 9 फोन, 1 ड्राइविंग लाइसेंस और एक व्यक्ति से नकद राशि जब्त की गई.

घ. बार-बार गवाही देने वाले व्यक्ति

कानून के मुताबिक आरोपी के रिश्तेदार या शुभचिंतक या दो स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में गिरफ्तारी या जब्ती की जानी चाहिए. हमारे शोध के मुताबिक 56 में से 19 गवाह पुलिसकर्मी थे, यानी हर तीसरा गवाह पुलिसकर्मी था. हमने शहडोल में दर्ज दो एफआईआर का अध्ययन किया - दोनों एफआईआर में गवाह एक ही व्यक्ति था. एक ही व्यक्ति का बार-बार गवाह बनना एक पुलिस स्टेशन द्वारा जांच में मदद के लिए 'स्टॉक विटनेस (पुलिस के निर्देश पर गवाही देने वाले व्यक्ति)' के इस्तेमाल की ओर इशारा करता है, जो इन गवाहों की स्वतंत्रता को प्रभावित करता है.

गवाह विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि से थे. हर गवाह की सही सामाजिक पृष्ठभूमि बता पाना संभव नहीं है. लेकिन कुछ प्राथमिकी में, पुलिस ने स्पष्ट रूप से गवाहों की जाति का उल्लेख किया है जबकि अन्य गवाहों की जाति उनके उपनाम से पता की जा सकती है. 10 सामान्य श्रेणी यानी उत्पीड़क-जाति से और अन्य संभवतः सामान्य श्रेणी से थे. दो गवाह एसटी, 4 गवाह एससी, 6 ओबीसी और 1 गवाह डीएनटी श्रेणी से थे.

ङ. शिकार करने की आरोपी महिलाएं

34 प्राथमिकी के 111 आरोपियों में से 3 महिलाएं थीं. इन तीनों महिलाएं को दो एफआईआर में आरोपी बनाया गया था. इन तीन महिलाओं में से दो शहडोल और एक क्राइम ब्रांच पुलिस स्टेशन, भोपाल में दर्ज प्राथमिकी में आरोपी हैं. इनमें से दो एसटी और एक सामान्य वर्ग से थी. दो 26 से 35 वर्ष के आयु वर्ग की थीं और एक की उम्र 56 वर्ष से अधिक थी. इन दो मामलों का विश्लेषण नीचे है:

केस स्टडी #1 पी.एस. कोतवाली शहडोल (शहडोल)

पुलिस को अज्ञात मुखबिर से सूचना मिली कि शहडोल में बरगद के पेड़ के नजदीक एक महिला के पास जंगली जानवरों के नाखून और हड्डियां हैं जिसे वह बेचने का प्रयास कर रही है. पुलिस ने वहां पहुंचकर दो महिलाओं (उम्र 30 और 56 वर्ष) को बैग के साथ अपरिचित भाषा में बात करता पाया. सब-इंस्पेक्टर ने तलाशी कर इन महिलाओं के बैग से जानवर, संभवतः पैंगोलिन, के छह नाखून और 15 चट्टा (त्वचा का ऊपरी हिस्सा) जब्त किया. पुलिस ने एफआईआर में यह दर्ज किया कि आरोपी महिलाओं द्वारा जानवरों के अंगों को रखने के संबंध में कोई कानूनी दस्तावेज या लाइसेंस पेश नहीं किया गया. R41 जगरूप सिंह कुछ समय बाद एक सर्टिफिकेट के साथ लौटा, जिसमें कहा गया था कि जब्त वस्तुएं पैंगोलिन के शरीर के हिस्से हैं. इसके बाद, पुलिस ने महिलाओं को डब्ल्यूपीए की धारा 51, 52 और 57 के तहत औपचारिक रूप से गिरफ्तार कर लिया. इस प्राथमिकी में जानवर की शिनाख्त के लिए नियुक्त सिपाही आर41 का नाम गजरूप सिंह था और पहचान कर लेने के बाद उसका नाम जगरूप सिंह बताया गया.

केस स्टडी #2 पी.एस. अपराध शाखा (भोपाल)

एक मुखबिर से सूचना मिली कि भानपुर के निकट कुछ लोगों, जिनमें से एक महिला थी, के पास संरक्षित दोमुंहा सांप है. पुलिस को वाहनों का नंबर भी बताया गया. पुलिस ने सूचना राज्य स्तरीय टाइगर स्ट्राइक फोर्स को दी और दो वन अधिकारियों एवं एक गवाह के साथ मौके पर पहुंची. पुलिस ने उन्हें घेर लिया और दोमुंहा सांप तथा चारों आरोपियों के मोबाइल और वाहन जब्त कर लिए. वन अधिकारियों के अनुसार, जब्त किया गया सांप डब्ल्यूपीए की अनुसूची IV के तहत संरक्षित जानवर था. पुलिस ने डब्ल्यूपीए की धारा 9, 38, 48ए, 51(1), 52 और 57 के तहत एक अनुसूचित जानवर के शिकार, उसे कब्जे में रखने और परिवहन के आरोप में सभी व्यक्तियों को गिरफ्तार किया और जब्त सामग्री का गिरफ्तारी पत्रक (अरेस्ट मेमो) और पंचनामा तैयार किया.

च. अन्य कानून

पुलिस ने छह प्राथमिकी में शस्त्र अधिनियम की धारा 25 और 27 के साथ भी मामला दर्ज किया. आर्म्स एक्ट, 1959 की धारा 25 का नौ बार जबकि इसी कानून की धारा 30 केवल एक बार इस्तेमाल की गई. दो एफआईआर में बताया गया कि अभियुक्तों ने आईएफए की धारा 52 का उल्लंघन किया. आईएफए की धारा 33(1) के तहत केवल एक बार मामला दर्ज किया गया. पुलिस ने सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 की धारा 3 और 4 के तहत भी एक प्राथमिकी दर्ज की. पुलिस द्वारा आईपीसी की धारा 429 का दो बार और धारा 34 का तीन बार इस्तेमाल किया गया. आईपीसी की धारा 188, 201, 294, 304, 332, 353, 435 और 506 एक बार लगाई गई.

अन्य कानून	अभियोग	मामलों की संख्या
25 AA	लाइसेंस के बिना प्रतिबंधित हथियारों के निर्माण, हस्तांतरण, बिक्री और इसे धारण करने से संबंधित कई प्रकार के अपराधों के लिए विभिन्न प्रकार की सजाओं का प्रावधान है. पुलिस अपनी एफआईआर में किसी खास उप-धारा का इस्तेमाल नहीं करती है.	9
27 AA	शस्त्र अधिनियम के विभिन्न धाराओं के तहत आग्नेयास्त्रों या गोला-बारूद के इस्तेमाल के लिए दंडित करता है. पुलिस अपनी एफआईआर में किसी खास उप-धारा का इस्तेमाल नहीं करती है.	6
30 AA	हथियारों के लाइसेंस संबंधी प्रावधानों के उल्लंघन पर दंड का प्रावधान करता है.	1
33(1) IFA	संरक्षित वन में कई प्रकार की गतिविधियों को दंडित करता है. पुलिस अपनी एफआईआर में किसी खास उप-धारा का इस्तेमाल नहीं करती है.	1
52 IFA	वन अपराध के लिए संपत्ति की जब्ती और इसके उपयोग पर रोक. दीवानी कार्यवाही से यह निर्धारित करना कि क्या जब्त संपत्ति सरकार की संपत्ति बन जाएगी? यह स्पष्ट नहीं है कि यहाँ इसका इस्तेमाल क्यों किया गया.	2
429 IPC	मवेशियों या 50 रुपये से अधिक मूल्य के जानवर को अपंग बनाकर नुकसान पहुंचाने पर सजा देता है. डब्ल्यू के तहत ऐसे अपराधों के लिए कारावास से अधिक की सजा.	1
201 IPC 332 IPC 353 IPC 506 IPC	अपराध के साक्ष्य का विलोपन करना लोक सेवक को अपने कर्तव्य के निर्वहन से रोकने के लिए चोट पहुँचाना लोक सेवक को अपने कर्तव्य के निर्वहन से भय दिखाकर रोकने के लिए हमला करना या आपराधिक बल का प्रयोग आपराधिक धमकी	1

294 IPC 304 IPC	सार्वजनिक रूप से अश्लील हरकत करना. यह स्पष्ट नहीं है कि यहाँ इसका इस्तेमाल क्यों किया गया. हत्या की श्रेणी में न आने वाली गैर इरादतन हत्या. यह स्पष्ट नहीं है कि यहाँ इसका इस्तेमाल क्यों किया गया क्योंकि विश्लेषित प्राथमिकियों में किसी व्यक्ति की मृत्यु का उल्लेख नहीं है.	1
3, 4 PDPP 435 IPC	भवन, तेल पाइप लाइन, खदान, कारखाने और सार्वजनिक परिवहन के साधनों जैसी सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंचाना या आग या विस्फोटक पदार्थ से नुकसान पहुंचाना. यह स्पष्ट नहीं है कि इसे शिकार संबंधी अपराध के मामले में क्यों लागू किया गया. आग या विस्फोटक पदार्थ का इस्तेमाल कर नुकसान करना.	1

छ. वन विभाग की कार्रवाई

हमारे अध्ययन में 34 में से 9 एफआईआर में वन विभाग शामिल था. दो मामलों में, वन विभाग का एक-एक अधिकारी प्राथमिकी का शिकायतकर्ता था.

एक मामले में, वन्यजीव अपराध नियंत्रण ब्यूरो (डब्ल्यूसीसीबी) के इंस्पेक्टर को एक मुखबिर से घटना की जानकारी मिली और फिर डब्ल्यूसीसीबी इंस्पेक्टर ने पुलिस अधिकारियों को सूचित किया. इसके बाद पुलिस अधिकारियों ने आरोपी व्यक्तियों को गिरफ्तार किया और प्रतिबंधित जंगली जानवर के शरीर के अंगों को जब्त किया.

एक मामले में, पुलिस ने वन विभाग से जंगली जानवर के पहचान से संबंधित सर्टिफिकेट मांगा. दो मामलों में मुखबिर की सूचना पर पुलिस ने वन विभाग के अधिकारियों को सूचित किया और उन्हें अपराध स्थल पर लेकर भी गई. एक मामले में वन विभाग के क्षेत्र में शिकार करने आए लोगों की तलाश में पुलिस ने फ़ॉरेस्ट गार्ड और फ़ॉरेस्ट केयरटेकर की मदद ली. एक मामले में, पुलिस ने वन विभाग के अधिकारियों के साथ मिलकर दो आरोपियों के घरों पर छापेमारी की. एक मामले में, वन विभाग के अधिकारियों को सूचित किया गया और जंगली जानवर की पहचान और जब्ती के लिए उन्हें घटना स्थल पर ले जाया गया.

II. बालू उत्खनन

एमपी पुलिस की वेबसाइट से प्राप्त 129 एफआईआर में से 95 (73.6%) एफआईआर बालू- उत्खनन के अपराध से संबंधित थे. ये एफआईआर मुख्य रूप से दो जिलों - सिंगरौली और सीधी से संबंधित थे. सोन नदी सिंगरौली और सीधी दोनों से होकर गुजरती है और बालू-उत्खनन संबंधी गतिविधियाँ नदी के आस-पास पाई गईं. विशेष रूप से ये गतिविधियाँ सोन घड़ियाल वन्यजीव अभयारण्य के अन्दर या उसके आस-पास की थीं, जिसे घड़ियाल संरक्षण के लिए प्रोजेक्ट क्रोकोडाइल के तहत बनाया गया था और यही कारण है कि इन एफआईआर में वन्यजीव संरक्षण अधिनियम के तहत भी आरोप लगाए गए थे.

बालू खनन की इन 95 एफआईआर में 64 सिंगरौली, 30 सीधी और एक एफआईआर होशंगाबाद जिले से संबंधित है. इनकी विशिष्ट प्रकृति के कारण इन्हें बाकी डेटा सेट से अलग कर दिया गया. कुल 95 एफआईआर के इस डेटासेट में आरोपित व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिक आरोप एमएमए के तहत अवैध बालू उत्खनन खनन के लिए दर्ज किए गए. डब्ल्यूपीए के तहत सह-अपराध के लिए आरोप लगाए गए क्योंकि इन गतिविधियों से वन्यजीव संरक्षण प्रभावित होता है. इनमें से कुल 94 एफआईआर में डब्ल्यूपीए की धारा 27 का इस्तेमाल किया गया है, जो किसी अभयारण्य में लोगों के प्रवेश को परिभाषित कानूनी उद्देश्यों तक सीमित करती है.

इनमें से करीब 92 फीसदी एफआईआर की सूचना पुलिस को अपने मुखबिरों से मिली. शेष 8% एफआईआर का स्रोत पुलिस गश्त और आम नागरिकों एवं वन विभाग द्वारा की गई शिकायतें थीं.

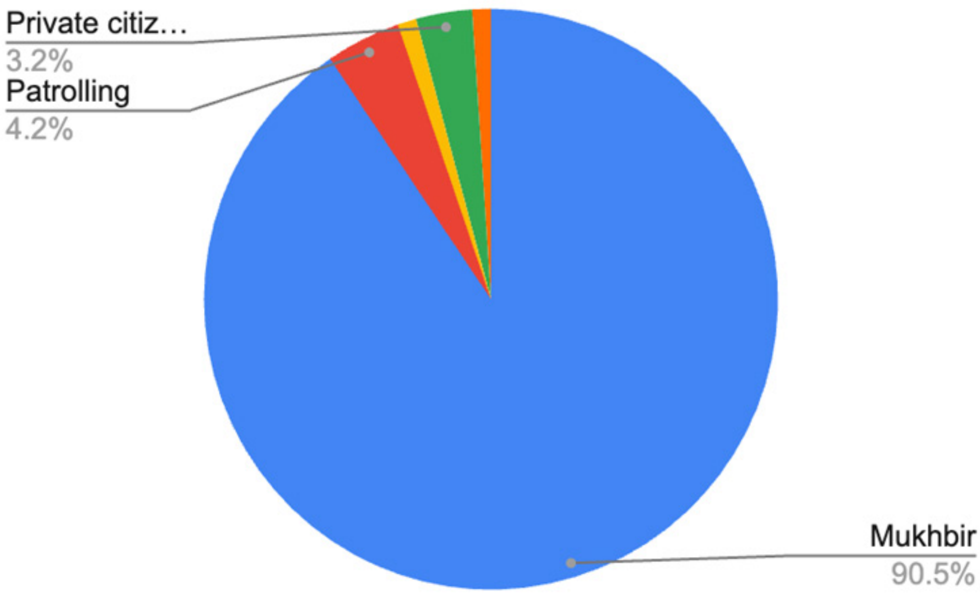

चित्र 2.ग: रेत उत्खनन के अपराधों से संबंधित प्राप्त सूचना के स्रोत का प्रतिशतवार विभाजन

इन अपराधों में से कुल 62% (59 एफआईआर) अपराध प्रतिबंधित क्षेत्र (नदी के किनारे या उसके पास) से संबंधित थे, जबकि बाकी 38% (36 एफआईआर) आपराधिक घटनाएँ सार्वजनिक गैर-व्यावसायिक स्थानों (अवैध बालू ले जा रहे ट्रक की सूचना मिलने पर) पर हुईं.

अपराध स्थल	विशिष्ट एफआईआर
वन विभाग का क्षेत्र/प्रतिबंधित क्षेत्र	59
सार्वजनिक स्थान (गैर-वाणिज्यिक)	36

ये प्राथमिकियां आमतौर पर ट्रक चालक, सहायक और/या ट्रक मालिक के खिलाफ दर्ज की गई थीं. इनमें से लगभग 41% (39 प्राथमिकी) केवल एक व्यक्ति और 44 फीसदी (44 एफआईआर) दो व्यक्तियों के खिलाफ दर्ज की गई थीं. और शेष 11 प्राथमिकी तीन या अधिक व्यक्तियों के खिलाफ दर्ज की गई थीं, जिनमें से एक में 13 लोगों और एक अन्य में 29 लोगों (जिनमें से 20 गैर-सूचीबद्ध) को नामित किया गया था.

इन 95 एफआईआर में कुल आरोपी व्यक्तियों की संख्या 203 थी क्योंकि आधे से अधिक एफआईआर में एक से अधिक व्यक्ति आरोपी थे. सिंगरौली में कुल 151, सीधी में 50 और होशंगाबाद में दो व्यक्ति आरोपित किए गए थे. इन 203 अभियुक्तों में से आधे से अधिक यानी कि 105 अभियुक्त (51.7%) प्राथमिकी दर्ज

करते समय पुलिस द्वारा गिरफ्तार नहीं किए गए थे. पुलिस केवल 30.5% एफआईआर (62 एफआईआर) में ही गिरफ्तारियां कर पाई थी. लगभग 17.7% मामलों (36 एफआईआर) में, पुलिस ने यह नहीं बताया कि वह आरोपी को पकड़ने में सक्षम हुई या नहीं. कुल मिलाकर, बड़ी संख्या में आरोपी भागने में सफल रहे क्योंकि जब पुलिस अवैध बालू से भरे ट्रकों तक पहुंची, तब तक ट्रक का चालक ट्रक से कूद कर भाग गया था. यह इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि एफआईआर में आरोपित व्यक्तियों में से 40.1% (203 व्यक्तियों में से 83) की पहचान नाम से नहीं, बल्कि अज्ञात, वाहन चालक या वाहन मालिक के के रूप में की गई थी. आरोपी व्यक्तियों की सबसे बड़ी संख्या, क्रमशः 13 और 29, वाली दो एफआईआर में, आरोपी व्यक्तियों ने अधिकारियों के साथ शारीरिक और मौखिक दुर्व्यवहार किया, उन्हें धमकी दी और फिर भाग गए.

इस डेटा सेट में किसी आरोपी को जमानत दिए जाने संबंधी कोई जानकारी नहीं मिली. आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिक आरोप रेत-खनन के लिए एमएमए अधिनियम, 1957 की धारा 20 या 21 के तहत लगाया गया. ये दोनों जमानती अपराध हैं. हालाँकि, आईपीसी, आइएफ़ए, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, लोक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 और डब्ल्यूपीए सहित प्राथमिकियों में कई कानूनों के तहत आरोप दर्ज किए गए. ऐसा 71 प्राथमिकी में सामने आया जिसने इन अपराधों को गैर-जमानती बना दिया.

सभी 95 एफआईआर में पुलिस ने रेत को जब्त कर लिया. हालांकि, इनमें से केवल 79 एफआईआर में वाहनों को जब्त किए जाने की जानकारी मिली. इसके अतिरिक्त, वन विभाग इनमें से अधिकांश मामलों में शामिल नहीं था. पुलिस द्वारा दर्ज कुल 95 एफआईआर में से, वन विभाग के अधिकारियों ने केवल दो एफआईआर दर्ज कीं और दोनों बार उन्होंने शिकायतकर्ता के रूप में ऐसा किया. चूंकि डब्ल्यूपीए के तहत पुलिस और वन विभाग दोनों के पास जांच की शक्तियां हैं, वे दोनों अपने अधिकार क्षेत्र में अलग-अलग जांच और मुकदमा चलाते हैं. इस बारे में हमने शिकार संबंधी अपराधों के अपने विश्लेषण में ज्यादा गहराई से अवलोकन किया.

हमने पाया कि जहां अवैध बालू-उत्खनन की जांच पुलिस द्वारा डब्ल्यूपीए के तहत दर्ज अपराधों का एक बड़ा हिस्सा है, वहीं ये अपराध मध्य प्रदेश के बहुत ही छोटे से क्षेत्र में हो रहे हैं. इन एफआईआर का अधिक विस्तार से विश्लेषण करने के लिए बालू-उत्खनन गतिविधियों का सुपरिभाषित और विशिष्ट अध्ययन आवश्यक है. यह हमारे वर्तमान अध्ययन के दायरे से बाहर है, जिसका उद्देश्य शिकार संबंधी मामलों का अध्ययन करना है.

निष्कर्ष

एफआईआर से प्राप्त आंकड़े बताते हैं कि एफआईआर दर्ज करने में अनियमितता हुई है, जहां कुछ वर्षों में बहुत कम एफआईआर दर्ज हुए और गिरफ्तारियां हुईं और अन्य वर्षों में कोई एफआईआर या गिरफ्तारी नहीं हुई. इसके अलावा, एफआईआर और शिकायतों के पंजीकरण और जांच में पुलिस द्वारा पालन की जाने वाली प्रक्रियाओं का कोई डाटा सेट उपलब्ध नहीं था.

रिकाड्‌र्स में पाई जाने वाली समानताओं में से एक यह है कि अपराध घटित होने की 86 प्रतिशत सूचना मुखबिर से मिली जो पुलिस के सहयोगी होते हैं और जिन्हें अक्सर पुलिस द्वारा अपराध की सूचना देने

और फिर अभियोजन के दौरान गवाही देने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है. रेत-उत्खनन और वन्य जीवों के शिकार एवं व्यापार दोनों से संबंधित दर्ज एफआईआर में यह प्रवृत्ति देखी गई.

इसके अलावा, अपराधों को अत्यधिक गंभीर बनाने का स्पष्ट इरादा पुलिस की कार्रवाई में देखा जा सकता है. ऐसे अपराध, जिनके लिए डब्ल्यूपीए के तहत कड़ी सजा का प्रावधान नहीं है, को संगीन जुर्म बनाने के लिए अन्य कानूनों के प्रावधानों के साथ एफआईआर दर्ज किया जाता है. इसके परिणामस्वरूप आरोपी व्यक्ति को अधिक कठोर मुकदमे का सामना करना पड़ता है और अतिरिक्त सजा दी जाती है.

एफआईआर के आंकड़ों से पता चलता है कि अधिकांश एफआईआर उत्पीड़ित समुदायों के लोगों के खिलाफ दर्ज की गईं और ऐसा इस तथ्य की उपेक्षा करते हुए किया गया कि इन समुदायों के लोगों का दैनिक जीवन और आजीविका जंगल पर निर्भर है. कई मामलों में, स्पष्ट तौर पर ऐसी किसी जब्ती का विवरण दर्ज नहीं किया गया जो यह प्रमाणित करे कि वास्तव में अपराध और अपराध करने के इरादे से ऐसा किया गया.

.

.

7. वन विभाग राज

वन विभाग द्वारा दर्ज मामलों का विश्लेषण

यह अध्याय डब्ल्यूपीए के तहत बनाए गए 24 मंडलों के कुल 48 जिलों में मप्र वन विभाग द्वारा दर्ज किए गए शिकार के कुल 1,414 मामलों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है. यह कथित अपराधों के दर्ज घटनास्थल पर शिकार के लिए इस्तेमाल किए गए तरीकों का दस्तावेजीकरण करता है, आरोपित या अभियुक्त बनाए गए व्यक्तियों के समुदायों की पहचान करता है और 16 फरवरी 2022 तक इन मामलों की स्थिति के बारे में जानकारी प्रदान करता है. यह विश्लेषण मध्य प्रदेश के वन विभाग द्वारा 2016 से 2020 तक के पांच साल की अवधि के पूरे राज्य से संबंधित सार्वजनिक रूप से उपलब्ध कराए गए रिकाड्र्स पर आधारित है. ये रिकाड्र्स विभाग के डी-1 रजिस्टर, जो वन अपराध केस रजिस्टर (एफओसीआर) डेटाबेस का हिस्सा है, में दर्ज हैं.

इन रिकाड्र्स में यह सावधानीपूर्वक दर्ज है कि ये वन क्षेत्र किस तरह सर्किल, सब-डिवीजन, बीट और सब-बीट में विभाजित हैं. म.प्र. के कुल 24 मंडलों में से 5 मंडलों अर्थात्; बालाघाट, शाहडोल, जबलपुर, छतरपुर और ग्वालियर में कुल मामलों के क्रमशः 10.3%, 9.1%, 8.1%, 7.5% और 7.5% मामले दर्ज किए गए. यानी की इन 5 मंडलों में कुल मामलों के 42.5% मामले दर्ज हुए. सबसे कम मामलों वाले मंडलों में इंदौर (18 मामले), खंडवा (16 मामले), कुनो नेशनल पार्क (13 मामले), बांधवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान (11 मामले) और सतपुड़ा राष्ट्रीय उद्यान (9 मामले) शामिल हैं.

एक अपराध गठित करने और कोई आपराधिक आरोप तैयार करने के लिए, अपराध के विभिन्न घटकों को अपराध के घटनास्थल और बरामद वस्तुओं अर्थात अभियुक्त व्यक्ति या उनके आस-पास से जब्त की गई वस्तुओं की सहायता से समझा जाता है. प्रत्येक जांच प्राधिकरण द्वारा इन्हें दर्ज करना आवश्यक है और वन विभाग के अधिकारी भी इससे अलग नहीं हैं. ये दोनों कारक फारेस्ट गाड्र्स और रेंज ऑफिसर्स की पुलिस कार्यप्रणाली और उनके अभियोजन के तरीकों को सामने लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं.

I. किसका अपराधीकरण किया जा रहा है?

क. आरोपी व्यक्तियों की संख्या

हमने प्रत्येक मामले में आरोपी व्यक्तियों की संख्या के आधार पर मामलों को वर्गीकृत करने के लिए वन विभाग के डी1 रजिस्टर में दर्ज मामलों के विवरण का अध्ययन किया. इस विश्लेषण से हमें पता चलता है कि कुल 1,414 मामलों में से कितने लोग किस अनुपात में आरोपी हैं.

हमारे डेटा सेट के 1,414 मामलों में से 332 (23.5%) मामलों में कोई व्यक्ति आरोपी नहीं था. शेष 1,082 मामलों में से, 437 मामलों (31%) में एक व्यक्ति ही आरोपी था. डब्ल्यूपीए के तहत दर्ज अपराध के 536 मामले (38%) दो से पांच अभियुक्तों के खिलाफ दायर किए गए थे. 8% से कम मामलों में 6 से 15 लोगों के समूह के खिलाफ आरोप थे. शिकार के केवल एक मामले में 16 अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया था. इस प्रकार, हमारा विश्लेषण बड़े समूहों के खिलाफ मामले दर्ज करने की कार्यप्रणाली के साथ-साथ आरोपी व्यक्तियों को निर्धारित किए बिना (जैसा कि बिना किसी आरोपी वाले मामलों की बड़ी संख्या से साफ़ है) मामले दर्ज करने संबंधी विभाग की लापरवाही को भी दर्शाता है.

ख. आरोपित व्यक्ति किस समुदाय से हैं?

इस खंड में, हमने वन विभाग द्वारा दर्ज 1,414 मामलों के सभी अभियुक्तों का सामुदायिक आधार पर

वर्गीकरण कर विश्लेषण किया है. ये मामले 2016 से 2020 तक की पांच साल की अवधि में दर्ज किए गए थे. यह बताता है कि डब्ल्यूपीए और अन्य वन प्रशासन कानूनों के तहत अभियोजन का सामना करने वाले हाशिए के समुदायों का कितना अपराधीकरण किया गया है.

कुल 1414 रिकाड्‌र्स में से 383 रिकाड्‌र्स में किसी भी आरोपित व्यक्ति के संबंध में कोई जानकारी दर्ज नहीं थी. इन 383 रिकाड्‌र्स में ऐसे भी उदाहरण शामिल नहीं हैं जहाँ आरोपी व्यक्ति की जानकारी को अज्ञात के रूप में चिह्नित किया गया हो. शेष 1,031 रिकाड्‌र्स में कुल अभियुक्तों की संख्या 2,790 थी और उनके बारे में जानकारी भी दर्ज थी. ऐसा इसलिए है क्योंकि कई अपराध में एक से अधिक व्यक्तियों को आरोपित किया गया था.

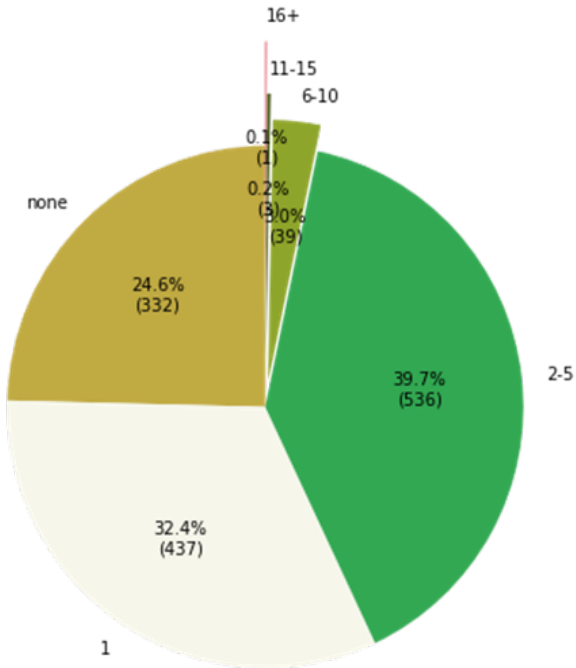

चित्र 3.क: प्रत्येक मामले में पकड़े गए आरोपी व्यक्तियों की कुल संख्या (0, 1, 2-5, 6-10, 11-15, 16+ की श्रेणी में)

वन्यजीव अपराध संबंधी पुलिस और वन विभाग के रिकाड्‌र्स में एक स्पष्ट अंतर यह था कि वन विभाग ने कई मामलों में आरोपी व्यक्तियों की जाति भी दर्ज की थी. इस जानकारी और हमारी सामुदायिक वर्गीकरण पद्धति की मदद से हमने अभियुक्तों के समुदाय की प्रशासनिक श्रेणी का विश्लेषण किया.

हमने पाया कि इन रिकाड्‌र्स में, शिकार के आरोपी सभी व्यक्तियों में से 44% से अधिक एसटी थे, जबकि 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य में एसटी की कुल जनसंख्या केवल 21.04% है. इसके अलावा कुल अभियुक्तों में से 13.55% ओबीसी, 7.74% एससी, 8.46% घुमंतू जनजातियों/विमुक्त जनजातियों (एनटी-डीएनटी) और 3.66% संभवतः सीमांत श्रेणी (ऐसे उपनाम वाले जो विशेष रूप से कम-से-कम दो उत्पीड़ित जाति समुदायों द्वारा उपयोग किया जाता है और किसी उत्पीड़क जाति द्वारा नहीं) से थे. सभी अभियुक्तों में से 9.71% संभवतः सामान्य (उत्पीड़ित और उत्पीड़क जाति समुदायों दोनों द्वारा उपयोग किए जाने वाले उपनाम धारण करने वाले) श्रेणी और 1.36% सामान्य श्रेणी से संबंधित थे जबकि 2.76% नामों की सामुदायिक श्रेणी का पता नहीं लगाया जा सका था. इसके अतिरिक्त 8.67% नामों में हमारे विश्लेषण

के लिए पर्याप्त जानकारी (उपनाम) नहीं थी और उन्हें 0 (शून्य) के रूप में वर्गीकृत किया गया था. कुल मिलाकर, सभी अभियुक्तों में से तीन-चौथाई (77.49%) से अधिक उत्पीड़ित जाति समुदायों के थे. इस डेटा सेट में एसटी का उच्च प्रतिनिधित्व एक हद तक अपेक्षित था क्योंकि वन विभाग के रिकाड्र्स जिन क्षेत्रों से संबंधित हैं उनका बड़ा हिस्सा अनुसूचित क्षेत्रों के अंतर्गत आता है. हालांकि, पंजीकृत पीओआर के क्षेत्रवार (जिला और पीए) संख्या से पता चलता है कि सबसे अधिक मामले गैर-संरक्षित क्षेत्रों - बालाघाट (146 मामले), शहडोल (128 मामले), जबलपुर (115 मामले), छतरपुर (106 मामले) और ग्वालियर (106 मामले) - से संबंधित हैं. यहां, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि हालांकि जंगलों से सटे भूमि पर बड़े पैमाने पर वन आश्रित समुदायों का कब्जा है, जिसकी पुष्टि हमारे फील्डवर्क से भी होती है, लेकिन तथ्य यह है कि कुल 1,414 मामलों में से केवल 17.32% मामले (सभी पीए से संबंधित कुल 245 मामले) इन क्षेत्रों से संबंधित हैं. इससे पता चलता है कि सीमांत समुदायों का असमान रूप से उच्च प्रतिनिधित्व पीए के आसपास उनकी सघन आबादी से संबंधित नहीं है.

जनगणना में अनुसूचित जाति की आबादी वाले शीर्ष पांच जिले हैं - उज्जैन, दतिया, टीकमगढ़, शाजापुर और छतरपुर और अनुसूचित जनजाति की आबादी वाले शीर्ष पांच जिले हैं - अलीराजपुर, झाबुआ, बड़वानी, डिंडोरी और मंडला. साल 2016 से 2020 के बीच वन विभाग द्वारा दर्ज कुल 1,414 मामलों में से केवल 13.57% मामले (195 मामले) उपरोक्त 5 जिलों में दर्ज किए गए. एसटी और एससी की ज्यादा आबादी वाले इन जिलों में से अलीराजपुर और शाजापुर में इस अवधि के दौरान वन विभाग द्वारा कोई मामला दर्ज नहीं किया गया था जबकि अकेले मंडला में 195 मामलों में से कुल 108 मामले दर्ज किए गए. यह इस मिथक को तोड़ता है कि वन विभाग द्वारा दर्ज मामलों में एसटी और एससी समुदायों का उच्च प्रतिनिधित्व इन क्षेत्रों में उनकी अधिक आबादी के कारण है.

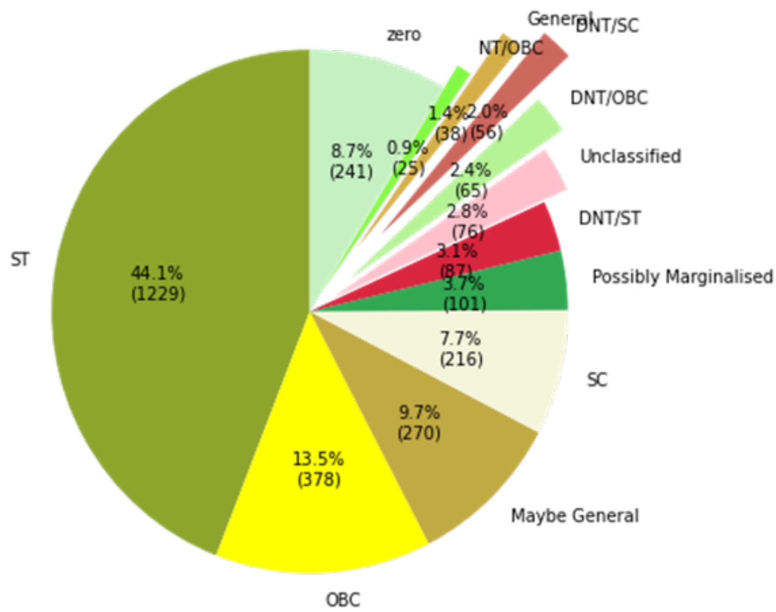

चित्र 3.ख - 1,414 मामलों में अभियुक्तों की समग्र सूची में अलग-अलग समुदायों के अनुपात को दर्शाता पाई-चार्ट

II. अपराध कैसे निर्धारित किए जाते हैं?

क. अपराधों का वर्गीकरण

यह खंड अपराधों और अपराधों के संयोजन या वन विभाग द्वारा मामले दर्ज करने के लिए उपयोग किए जाने वाले प्रावधानों की व्याख्या करता है. यह बताता है कि डब्ल्यूपीए के किन प्रावधानों के तहत सबसे अधिक मामले दर्ज किए जाते हैं और किसी मामले में किन-किन प्रावधानों का एक साथ इस्तेमाल किया जाता है. यह इस तथ्य को भी प्रकट करता है कि किस तरह वन विभाग आवश्यक मानकों का पालन किए बिना मामले दर्ज करने के लिए डब्ल्यूपीए प्रावधानों का इस्तेमाल करता है और इससे जुड़ी कमियां क्या हैं.

2016 से 2020 तक दर्ज 1,414 मामलों में, हमने पाया कि डब्ल्यूपीए के अलावा, जैविक विविधता अधिनियम, 2002 (दो उदाहरण) और आईएफए, 1927 (तीन उदाहरण) के विभिन्न प्रावधानों के तहत आरोप लगाए गए थे. हमने डब्ल्यूपीए के अलावा अन्य अधिनियमों के इस्तेमाल का विश्लेषण नहीं किया क्योंकि डी1 रजिस्टर में अन्य अधिनियमों के नाम अस्पष्ट रूप से दर्ज किए गए थे. उदाहरण के लिए, धारा 51 (डब्ल्यूपीए प्रावधानों के उल्लंघन संबंधी अपराधों के लिए जुर्माना लगाता है) को कुछ मामलों में जोड़ा गया है, जबकि इसे कई अन्य मामलों में बिना किसी स्पष्टीकरण के नहीं जोड़ा गया. इसके अलावा, 10 मामलों में अपराध की धारा का उल्लेख किए बिना केवल धारा 50 और 51 का उल्लेख किया गया है, जो वन विभाग के अधिकारियों को प्रवेश, तलाशी, गिरफ्तारी और हिरासत संबंधी शक्तियां प्रदान करता है और जुर्माना लगाने का भी अधिकार देता है. 12 मामलों में, कथित अपराध संबंधी प्रावधान को निर्दिष्ट किए बिना केवल धारा 2, जो परिभाषा प्रदान करती है, का उल्लेख किया गया. इसी तरह, 10 मामलों में या तो किसी प्रावधान का उल्लेख नहीं किया गया है या मामला दर्ज करने संबंधी बिना किसी प्रावधान का जिक्र किए बगैर असंबद्ध जानकारी का उल्लेख किया गया है. दो मामलों में हमें धारा '77' और '99' का उल्लेख मिला, जो डब्ल्यूपीए के तहत मौजूद ही नहीं है. मामले दर्ज करने में इस्तेमाल किए गए प्रावधानों के विश्लेषण से पता चलता है कि वन विभाग पूरी तरह मनमाने ढंग से प्रावधानों का इस्तेमाल करता है. तथ्य यह है कि पांच साल की अवधि (2016 से 2020) के दौरान पंजीकृत मामलों में इस तरह की अस्पष्टता बड़े पैमाने पर मौजूद है. यह दर्शाता है कि मामले दर्ज करने में डब्ल्यूपीए प्रावधानों के मनमाने उपयोग पर रोक लगाने के लिए वन विभाग के पास कोई प्रणाली नहीं है.

डब्ल्यूपीए के तहत, संयुक्त रूप से धारा 9, 39 और 51 सबसे अधिक इस्तेमाल किए जाने वाले प्रावधान थे, जिनका कुल 1,414 मामलों में से 302 मामलों (21.35%) में इस्तेमाल किया गया. धारा 9 अधिनियम की अनुसूची I, II, III और IV में निर्दिष्ट जंगली जानवरों का शिकार प्रतिबंधित करती है. धारा 39 शिकार किए गए जंगली जानवर के किसी भी अवशेष को रखने पर रोक लगाती है और इसे सरकारी संपत्ति घोषित करती है. इसके मुताबिक अपराध के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला कोई भी हथियार या उपकरण सरकारी संपत्ति होगी. साथ ही यह चीफ वाइल्डलाइफ वार्डन की अनुमति के बिना ऐसी सरकारी संपत्ति को नष्ट करने पर भी रोक लगाता है. धारा 51 में डब्ल्यूपीए के किसी भी प्रावधान के उल्लंघन के लिए तीन साल से लेकर सात साल तक की सजा और 10,000 रुपये से लेकर 25,000 रुपये तक के जुर्माने का प्रावधान है. हालांकि, लाइसेंस की शर्तों के उल्लंघन या वन्यजीवों के व्यापार से जुड़े अपराधों के अलग-अलग दंड हैं.

अपराधों का अगला सबसे अधिक संयोजन धारा 2, 9, 39, 50 और 51 के तहत वर्णित अपराधों का था जिनके तहत कुल 1,414 में से 83 मामलों (5.87%) में अपराध दर्ज किए गए. धारा 2 अधिनियम में

प्रयुक्त शब्दों की परिभाषा प्रदान करता है, जिसमें वन्य जीवन, जंगली जानवर, राष्ट्रीय उद्यान, शिकार, वन उपज आदि की परिभाषाएँ शामिल हैं. इन शब्दों का उपयोग अक्सर मामलों में अपराध स्थापित करने के लिए किया जाता है. धारा 50 डब्ल्यूपीए के तहत किए गए अपराधों के लिए वन विभाग के अधिकारियों को प्रवेश, तलाशी, गिरफ्तारी और हिरासत में लेने की शक्तियां प्रदान करता है. यह उन्हें ऐसे किसी भी कानून से छूट भी प्रदान करता है जो इस अधिनियम के तहत उन्हें प्रदत्त अधिकार को कम कर सकता है, इस आधार पर कि ये अधिकार 'उस समय किसी अन्य में निहित होने के बावजूद' प्रभावी हैं.

तीसरा सबसे आम अपराध कल 1,414 मामलों में से 70 मामलों (4.95%) में संयुक्त रूप से धारा 9, 39, 50 और 51 के तहत दर्ज अपराध थे. चौथा सबसे आम अपराध शिकार का अपराध है जिसके लिए धारा 9 के तहत मामला दर्ज किया गया. कुल 1,414 में से 43 मामलों (3%) में सिर्फ इस धारा के तहत मामला दर्ज किया गया. पांचवां सबसे आम संयोजन 37 मामलों में धारा 9 (शिकार पर प्रतिबंध) के साथ धारा 51 (दंड) का इस्तेमाल था. डब्ल्यूपीए के सभी धाराओं में से, अपराध दर्ज करने के लिए सबसे अधिक इस्तेमाल किए जाने वाले प्रावधान धारा 2 (परिभाषा संबंधी धारा) और धारा 9 (शिकार पर प्रतिबंध) थे.

1,414 मामलों में से 1,237 (88%) में, कथित रूप से धारा 9, जो शिकार पर प्रतिबंध लगाती है, के उल्लंघन के लिए मामला दर्ज किया गया.

ख. शिकार का तरीका

हमने सभी 1,414 मामलों से संबंधित वन विभाग के डी1 रजिस्टर में दर्ज शिकार के तरीकों की जानकारी का विश्लेषण किया ताकि शिकार के तरीकों और इस जानकारी को दर्ज करने के वन विभाग के पद्धति का पता लगाया जा सके. इसमें यह जानकारी भी शामिल है कि राज्य के किन क्षेत्रों में शिकार के कौन से तरीके ज्यादा इस्तेमाल में लाए जाते हैं.

कुल 1,414 पीओआर में से 331 (23.41%) में शिकार के तरीके के बारे में कोई विवरण नहीं था. इसके अलावा, 225 मामले (18.03%) बिना किसी विवरण के 'अन्य' शीर्षक के तहत दर्ज किए गए थे. इस रिपोर्ट के तहत अध्ययन किए गए सभी जिलों, सतपुड़ा रिजर्व के मामलों को छोड़कर, में 'अज्ञात' और 'अन्य' - इन दोनों शीर्षकों के तहत दर्ज किए गए मामलों की अनुपातहीन संख्या देखी गई. सतपुड़ा रिजर्व में केवल एक मामला ऐसा था जहां शिकार का तरीका दर्ज नहीं किया गया था और बांधवगढ़ ने इनमें से किसी भी श्रेणी के तहत कोई मामला दर्ज नहीं किया गया.

ऐसे मामलों में जहां शिकार के तरीके के बारे में जानकारी उपलब्ध थी, उनमें सभी मंडलों के 205 मामलों या कुल मामलों के 14.5% मामलों में फंदा लगाकार (आत्मरक्षा में जाल बिछाना) शिकार करने की बात दर्ज थी और सबसे ज्यादा शिकार इसी तरीके से किया गया. इसके बाद बिजली के तार से झटके लगने से मौत हुई और सभी मंडलों में इस वजह से 167 जानवरों की मौत हुई जो कि कुल मामलों के 11.81% मामले थे. शिकार के अन्य प्रमुख तरीकों में चाकू, भाले, तीर और कुल्हाड़ी जैसे औजारों से शिकार करना शामिल था और इस तरीके से शिकार के 178 या कुल मामलों के 12.59% मामले दर्ज किए गए.

शिकार के अन्य तरीकों में बंदूकों से शिकार (कुल 76 मामले या 5.37% मामले), पालतू कुत्तों द्वारा जानवरों का शिकार (कुल 48 मामले या 3.39% मामले), ज़हर देना (कुल 40 मामले या 2.83% मामले), और

देसी बम द्वारा शिकार (कुल 11 मामले या 0.78% मामले) करना शामिल है. सभी मंडलों में, बंदूकों से शिकार करने के सबसे अधिक मामले (20 मामले) ग्वालियर मंडल में दर्ज किए गए जो असंगत रूप से काफी उच्च स्तर है. ग्वालियर में जहर देकर मारने की संख्या (कुल 13 मामले) भी अनुपातिक रूप से अधिक थी, उसके बाद कान्हा राष्ट्रीय उद्यान में ऐसे 12 मामले दर्ज किए गए.

37 मामलों (2.62%) में जानवरों की मौत वाहनों के साथ दुर्घटनाओं में हुई. 19 मामलों (1.34%) में, जानवरों को 'ग्रामीणों द्वारा' मारा गया. जबकि कुल 1,414 पीओआर में से केवल एक मामले में यह दर्ज किया गया था कि इंसान के साथ संघर्ष में एक जानवर की मौत हुई, हालाँकि विश्लेषण किए गए मंडलों में ऐसा कोई मामला सामने नहीं आया.

32 मामलों (2.62%) में, शिकार का तरीका अज्ञात था और खाल, हड्डियों या जानवर के शरीर के अन्य हिस्सों को बरामद किया गया था.

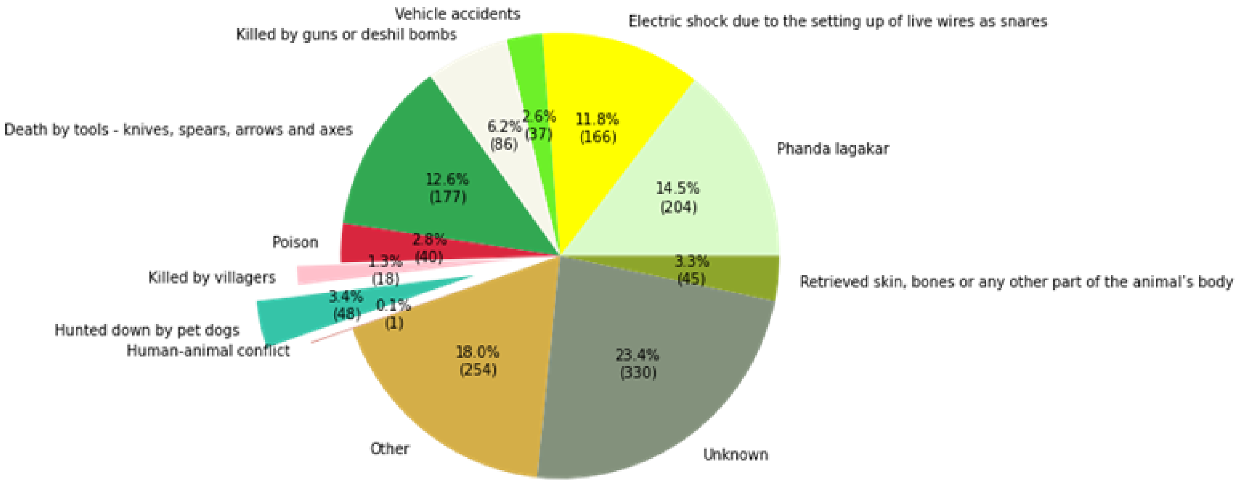

चित्र 3.ग: 1,414 मामलों में शिकार के दर्ज तरीकों के विवरण दर्शाने वाला पाई चार्ट

ग. अपराध स्थल

डब्ल्यूपीए के तहत मुकदमों के भौगोलिक संदर्भ को समझने के लिए अपराध स्थल महत्वपूर्ण होते हैं. अपराध स्थल अक्सर वन्यजीव कानूनों के उल्लंघन की पृष्ठभूमि को दर्शाता है. इस खंड में, हमने अपराधों की संख्या का मंडल या क्षेत्र, जहाँ अपराध घटित हुए, के आधार पर विश्लेषण एवं वर्गीकरण किया है और अपराध स्थल को रिकॉर्ड करने के वन विभाग के तरीकों का भी दस्तावेजीकरण किया है.

वन विभाग वन क्षेत्रों को मंडल, उप-मंडल, बीट एवं सब-बीट में विभाजित करता है. इन क्षेत्रों के भीतर, विशिष्ट इलाकों को दर्शाने के लिए कम्पार्टमेंट नंबर दिए गए हैं (वन क्षेत्रों की प्रकृति के आधार पर बीट क्षेत्रों का आकार बदल सकता है - पीए के कोर क्षेत्रों (मुख्य भागों) में बहुत सघन गश्त की जाती है और आरक्षित वनों के लिए, गश्त का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत होता है). हालाँकि, इस प्रशासनिक वर्गीकरण के अलावा, अपराध दर्ज करने के लिए, उनके रजिस्टर में 'घटनास्थल' के रूप में एक क्षेत्र को चिह्नित करने

की जरुरत होती है. विश्लेषण किए गए आंकड़ों में, ऐसा कोई मानक तरीका नहीं मिला जिसके आधार पर 'घटनास्थल' चिन्हित किया जाता हो.

अपराध स्थल के विवरण ज्यादातर अस्पष्ट रूप से वर्णित होते हैं. वे इतने अस्पष्ट होते हैं कि केवल यह दर्ज होता है कि अपराध आरक्षित या राजस्व वन क्षेत्र में हुआ था या सिर्फ यह बताया जाता है कि अपराध स्थल राजस्व या वन ग्राम में स्थित है. वन विभाग की प्रशासनिक श्रेणियों के संबंध में सबसे विशिष्ट टिप्पणी कम्पार्टमेंट नंबरों के संबंध में की गई थी (जो किसी आम आदमी या स्वयं वन आश्रित समुदायों को कोई स्पष्टता प्रदान नहीं करता है). इसके अलावा, कुछ उदाहरण ऐसे भी थे जहां केवल एक गाँव का नाम दर्ज किया गया था, इसके अलावा इस बात का कोई विवरण नहीं था कि गाँव जंगल के अन्दर स्थित था, इसकी सीमाओं पर था या इससे दूर बसा हुआ था. जहां अभियुक्त व्यक्ति के निवास से संबंधित विशिष्ट संकेतकों का उल्लेख था, वहां विवरण के रूप में केवल अभियुक्त व्यक्ति (व्यक्तियों) के घर या खेत का जिक्र किया गया था. विशेष स्थानीय भौतिक संकेतक के अन्य विवरण के रूप में केवल तालाब, नदी, घाट या पुल, स्कूल या बाजार के निकट जैसे विवरण दर्ज थे.

यह इस तथ्य के साथ जुड़ा हुआ है कि प्राथमिकी के विपरीत, एफओसीआर में इस बात को दर्ज नहीं किया जाता है कि अपराध कैसे हुआ? इस तरह यह जानने का कोई तरीका नहीं है कि अपराध कहां घटित हुआ, जब तक कि आप एक विशेष अपराध की जांच करने वाले किसी रेंज अधिकारी से संपर्क नहीं करते हैं.

कथित अपराधों के घटना स्थल के विश्लेषण से यह भी सामने आया कि पीए के आसपास के क्षेत्रों में ज्यादा संख्या में अपराध दर्ज किए गए हैं: सतपुड़ा रिजर्व से संबंधित केवल नौ मामले थे जबकि सतपुड़ा रिजर्व से सटे इलाके होशंगाबाद में 46 मामले दर्ज किए गए थे; इसी तरह, जबकि कान्हा राष्ट्रीय उद्यान से संबंधित 84 मामले दर्ज किए गए, इसके करीब के बालाघाट मंडल के क्षेत्र में 146 मामले दर्ज किए गए थे. मानक प्रक्रिया की इस कमी ने वन अधिकारियों द्वारा प्रचारित किसी भी कहानी पर भरोसा कर वनों के भीतर गैर-जवाबदेह पुलिस कार्यप्रणाली का विपुल अवसर प्रदान किया है.

घ. जब्त हथियार

हमने सभी 1,414 मामलों में वन विभाग द्वारा अपने डी1 रजिस्टर में दर्ज कथित शिकार और अन्य अपराधों के लिए जब्त औजारों और हथियारों का भी अध्ययन किया. यह खंड इस जानकारी को दर्ज करने के वन विभाग के तरीकों और प्रत्येक मामले से संबंधित इस जानकारी की बारीकी से जांच करने पर सामने आने वाले कमियों को प्रस्तुत करता है.

जब्त हथियार किसी जानवर के शिकार के तरीकों को प्रमाणित करने में अहम भूमिका निभाते हैं और डब्ल्यूपीए के तहत आरोपों को तय करते हैं. वन विभाग उपयोग विधि के एक अलग वर्गीकरण के तहत अपराध दर्ज करता है, जो जानवर की मौत के कारण (बंदूक, बम या अन्य हथियार) का पता लगाता है. शिकार के तरीके का वर्णन करने वाले खंड से यह स्पष्ट है कि वन विभाग द्वारा जांच किए गए अधिकांश मामलों में ये तरीके अस्पष्ट हैं (ऊपर देखें). हालांकि, इस अस्पष्टता के बावजूद, रेंज ऑफिसर्स द्वारा नियमित रूप से 'हथियार' जरूर जब्त किए जाते हैं. डेटा सेट में, जब्त की गई वस्तुओं में पारंपरिक कृषि उपकरण जैसे दरांती, भाले, कुल्हाड़ी, लाठी, लकड़ी एवं खूंटी, गड़ासा, दगनी, बरछी और चाकू शामिल थे. अन्य

मामलों में जब्त की गई वस्तुओं में एयर गन, बंदूक, बलम, जाल और बिजली के तार शामिल हैं. कुछ मामलों में बिस्फोटक गोलों, पटवार, फंदा और खून से लथपथ पत्थर की बरामदगी का उल्लेख भी किया गया है.

कुल 1,414 में से 725 मामलों यानी की 51.27% मामलों में कोई बरामदगी दर्ज नहीं की गई. इन 725 मामलों में से 164 मामले या 22.62% ऐसे मामले हैं जहां शिकार के तरीके के रूप में 'अन्य' दर्ज किया गया और 228 मामले या 31.45% मामले शिकार के 'अज्ञात' तरीके वाले मामले हैं. हालांकि, कई मामलों में जहां शिकार का तरीका ऐसा है (उदाहरण के लिए, बंदूक, औजार, बिजली के तार, वाहन दुर्घटना आदि का उपयोग) कि शिकार में इस्तेमाल हथियार या उपकरण की बरामदगी/जब्ती के बिना मामला दर्ज नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन फिर भी बिना किसी बरामदगी/जब्ती के मामले दर्ज किए गए. उदाहरण के लिए, अलग-अलग तरीकों से किए गए शिकार के निम्नलिखित मामलों में कोई बरामदगी या जब्ती नहीं दर्ज की गई: 'जब्त खाल' का उल्लेख वाले 9 मामले, 'ग्रामीणों द्वारा शिकार' के 10 मामले, 'जहर' देकर हत्या करने के 19 मामले, 'देसी बम' के इस्तेमाल के चार मामले, 'पालतू कुत्तों द्वारा शिकार' के 27 मामले, 'फंदा लगाकार' शिकार के 64 मामले, 16 मामले जहां शिकार के तरीके के रूप में 'खाल, हड्डियों या जानवर के शरीर का कोई अन्य हिस्सा बरामद करने' का उल्लेख है, वाहन से दुर्घटनाग्रस्त होने के 31 मामले, 'फंदा लगाकर बिछाए गए बिजली के तार के झटके से शिकार' के 62 मामले और स्थानीय उपकरण से शिकार करने के 53 मामले. यह जानकर हैरानी होती है कि वन विभाग बिना किसी बरामदगी या जब्ती के बड़ी संख्या में मामले दर्ज करता है, जो को कथित घटनाओं में जांच की गुणवत्ता दर्शाता है.

III. शिकार किए गए जानवर

इस खंड में हमने 2016 से 2020 तक के 1,414 मामलों में वन विभाग द्वारा दर्ज शिकार किए गए जानवरों की संख्या का उनके संबंधित अनुसूची, भौगोलिक स्थान और शिकार किए गए जानवरों की विशिष्ट प्रजातियों के अनुपात के आधार पर विश्लेषण किया है.

कुल मिलाकर, 1,414 मामलों में 54 विभिन्न प्रजातियों के कुल 2,095 जानवरों का शिकार किया गया. शहडोल मंडल में शिकार की सबसे ज्यादा घटनाएं हुईं जहाँ 2,095 जानवरों में से 339 (16.18%) का शिकार किया गया. इसके बाद ग्वालियर में 195 जानवरों (9.30%) का शिकार किया गया. कूनो और सतपुड़ा नेशनल पार्क में सबसे कम संख्या, क्रमशः 17 (0.81%) और 19 (0.9%), में जानवरों के शिकार के मामले सामने आए.

सबसे अधिक शिकार किए जाने वाले जानवर जंगली सूअर (366 जानवर या 17.47%), तोता (265 पक्षी या 12%), मोर (194 पक्षी या 9.26%) और चीतल (178 जानवर या 8.50%) थे. तोता वर्तमान में डब्ल्यूपीए की अनुसूची IV, जंगली सुअर अनुसूची III, मोर अनुसूची I के भाग-III (संभवतः राष्ट्रीय पक्षी के रूप में इसके महत्व के कारण) और चीतल अनुसूची I में संरक्षित प्राणी के रूप में दर्ज है. यहाँ, यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है मछली, जो वन विभाग द्वारा दर्ज 1,414 मामलों में पांचवां सबसे अधिक शिकार (8.26%) किया जाने वाला वन्यजीव है, डब्ल्यूपीए के किसी भी सूची के तहत संरक्षित नहीं है.

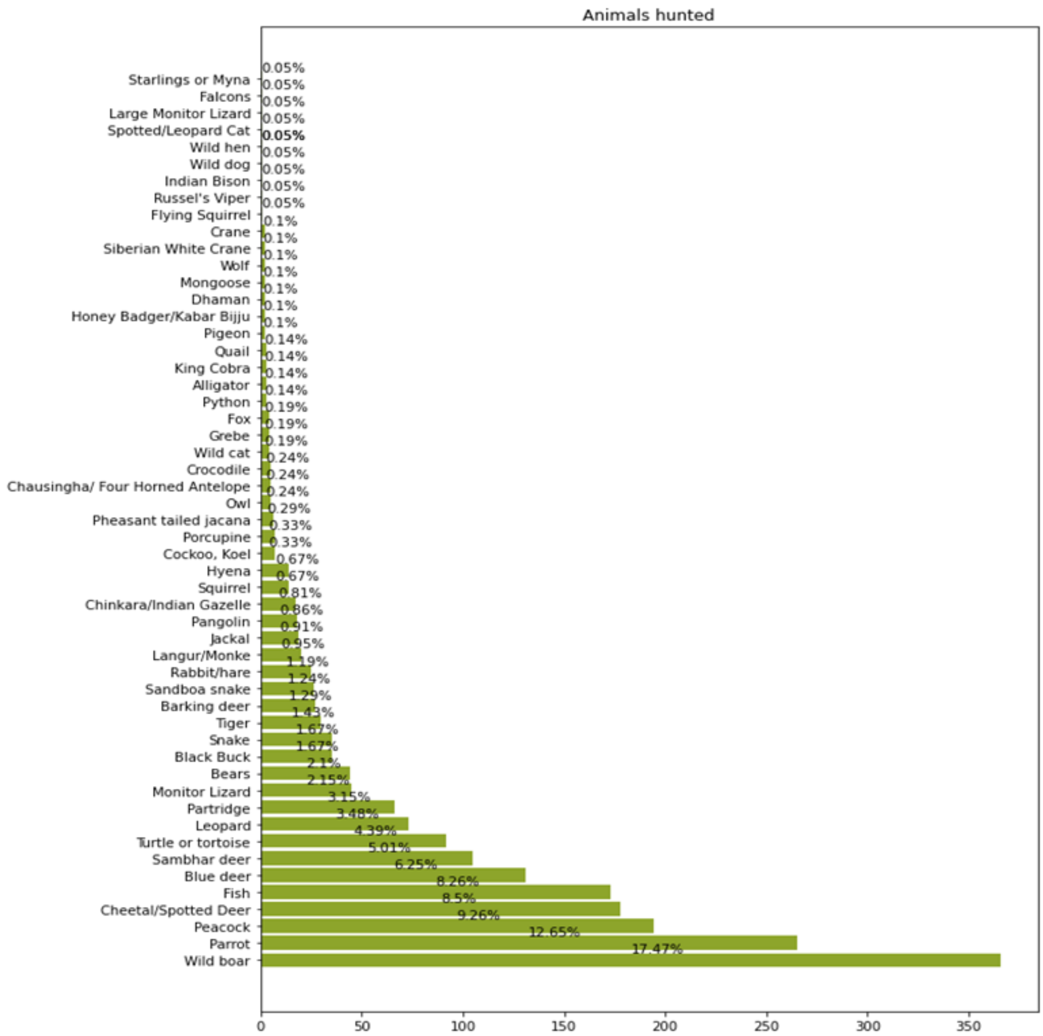

चित्र 3.घ: कुल 1,414 मामलों में शिकार किए गए सभी जानवरों का प्रतिशत-वार वितरण संबंधी ग्राफ़.

हमारे आंकड़ों में, 83.02% तोते (265 में से 220) का शिकार शहडोल मंडल में एक ही आरोपी व्यक्ति से जुड़े दो मामलों में किया गया था जबकि शेष मामले जबलपुर से संबंधित थे. इसी प्रकार, मोर के शिकार के मामलों में ग्वालियर में 60.30% (194 में से 117) और भोपाल में 12.88% (194 में से 25) मोरों के शिकार किए गए. मोरों के शिकार के शेष मामले कान्हा राष्ट्रीय उद्यान, खंडवा, जबलपुर, माधव राष्ट्रीय उद्यान, सतपुड़ा और होशंगाबाद को छोड़कर अन्य मंडलों से संबंधित थे, जहां इस अवधि में किसी भी मोर के शिकार की सूचना नहीं मिली. दूसरी ओर, सबसे अधिक शिकार किए जाने वाले जंगली सूअर और चौथी सबसे अधिक शिकार की जाने वाली मछली का सभी मंडलों में समान रूप से शिकार किया गया.

अनुसूचियों में सूचीबद्ध जानवरों के आधार पर देखें तो, शिकार किए गए सभी जानवरों के आधे से अधिक (2,095 में से 1,160 या 63.66%) अधिनियम की अनुसूची III, अनुसूची IV या अनुसूची V का हिस्सा थे. ऐसे 40% जानवर अकेले अनुसूची III से संबंधित थे. शिकार के प्रयासों के कुल 69 मामले ऐसे थे जहां वास्तव में किसी जानवर का शिकार नहीं किया गया था.

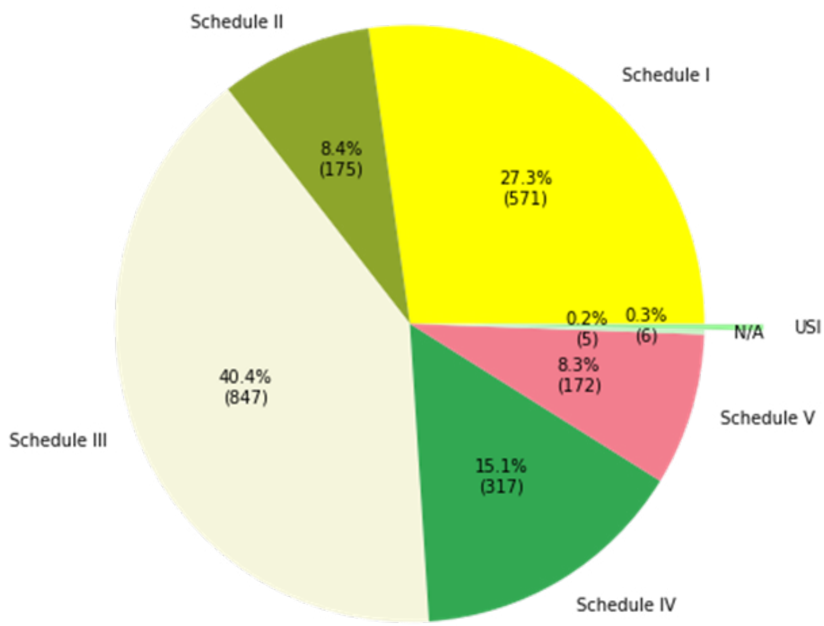

चित्र 3.ङ: शिकार किए गए जानवरों का विभिन्न अनुसूचियों के आधार पर पाई चार्ट द्वारा विवरण

क. विभिन्न अनुसूचियों से संबंधित जानवरों के शिकार का तरीका:

यह खंड 1,414 मामलों में दर्ज शिकार के विभिन्न तरीकों का विश्लेषण करता है. यह शिकार के तरीकों और शिकार किए गए जानवरों के विशिष्ट अनुसूची के साथ पारस्परिक संबंध भी प्रस्तुत करता है.

अनुसूची I के जानवरों के शिकार से जुड़े कुल 346 मामलों में से शिकार के तरीके के रूप में 78 मामलों में 'अज्ञात/लागू नहीं' और 71 मामलों में 'अन्य' दर्ज किया गया था, जो अनुसूच I के जानवरों के कुल मामलों का 43.06% है. इनके बाद अनुसूची I के जानवरों के शिकार में प्रयुक्त सबसे आम तरीका 'बिजली का तार बिछाकर शिकार' (53 मामले) और 'फंदा लगाकर शिकार' (कुल 346 के 43 मामले) करना था. अनुसूची II के जानवरों के कुल 56 मामलों में, शिकार का सबसे आम तरीका 'अन्य' (18 मामले) और 'अज्ञात/लागू नहीं' (14 मामले) था. इसके बाद 'बिजली का तार बिछाकर शिकार' और 'स्थानीय उपकरणों द्वारा शिकार' के तरीकों द्वारा कुल 56 मामलों में से छह-छह शिकार किए गए.

अनुसूची IV के जानवरों के शिकार के 65 मामलों में से, 26 मामलों या 40% मामलों में शिकार का तरीका 'अज्ञात/लागू नहीं' दर्ज किया गया था, इसके बाद 33.8% (22 मामले) में 'फंदा लगाकर', 12.3% (8 मामले) में 'अन्य' और 9.2% (6 मामले) में 'बंदूक से' को शिकार के तरीकों के रूप में दर्ज किया. अनुसूची V के जानवरों के शिकार के कुल 49 मामले थे, जिनमें शिकार का सबसे प्रमुख तरीका 'अन्य' (कुल 49 में से 34.7% या 17 मामले) था. अन्य तरीकों में 'फंदा लगाकर' (32.7% या 16 मामले) और 'अज्ञात/लागू नहीं' (20.4% या 10 मामले) प्रमुख थे.

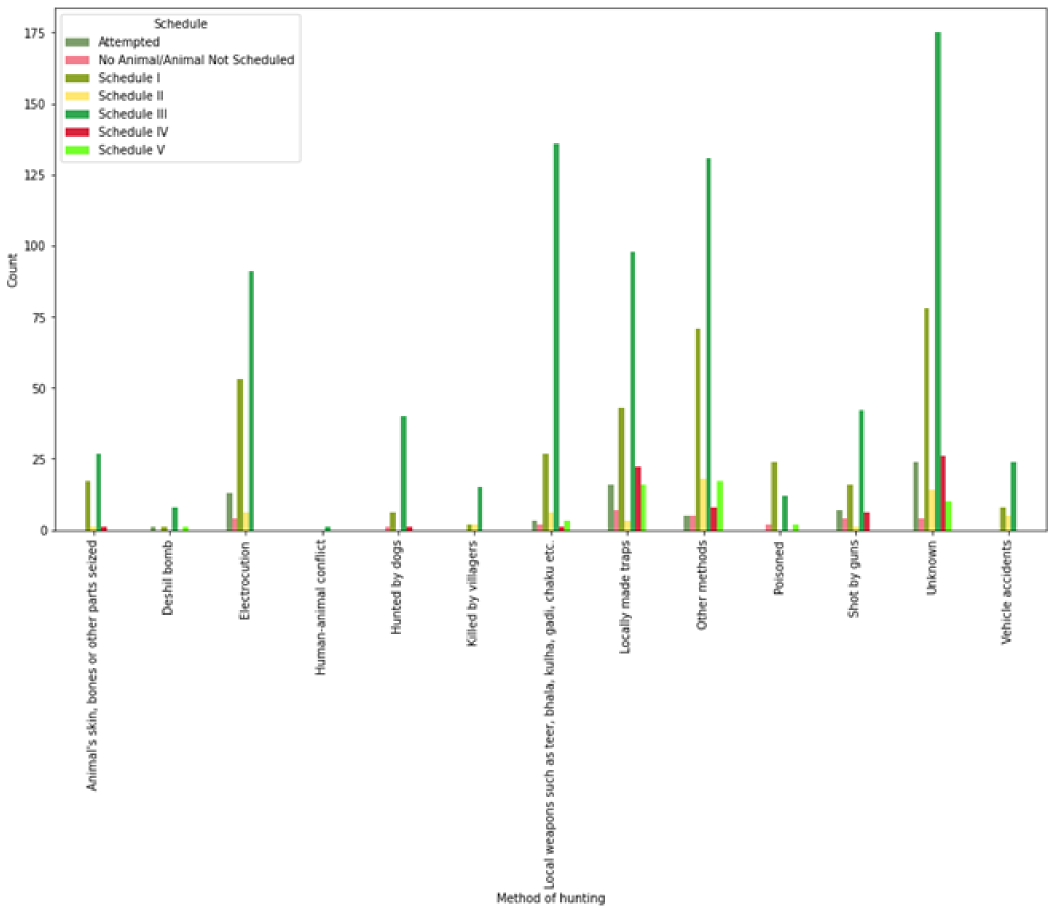

चित्र 3.छ: वाई-एक्सिस पर जानवरों के शिकार के विभिन्न तरीकों और एक्स-एक्सिस पर उदाहरणों की संख्या के साथ बार ग्राफ.

कुल 1,414 मामलों में से 800 मामले (56.58%) अनुसूची III के जानवरों के शिकार से संबंधित थे. इनमें से 21.9% मामलों में शिकार के तरीके के रूप में 'अज्ञात/लागू नहीं', 17% में स्थानीय उपकरणों द्वारा शिकार, 16.4% में 'अन्य' और 12.3% में 'फंदा लगाकार' दर्ज किया गया था. क्षेत्र में किए गए साक्षात्कारों से हमने जाना कि ऐसे बहुत से मामलों में जंगली सूअर जैसे जानवर, जो अनुसूची III के अंतर्गत आते हैं, जंगल के आसपास के खेतों में फसलों को नष्ट कर देते हैं. इन जानवरों का शिकार आमतौर पर खेत के चारों ओर 'फंदा' लगाकर या आत्मरक्षा में स्थानीय औजारों के इस्तेमाल से किया जाता है. हमारे मात्रात्मक आंकड़े इस निष्कर्ष को प्रमाणित करते हैं जो बताते हैं कि अनुसूची III के जानवरों के शिकार में प्रमुखता से इसी तरीके का उपयोग किया जाता है.

हमारे अध्ययन में यह भी पाया गया कि शिकार किए गए जानवरों में से सबसे ज्यादा (59.70%) अनुसूची III से संबंधित थे जबकि 24.83% अनुसूची I के तहत सूचीबद्ध थे. अनुसूची IV (3.40%), अनुसूची II (3.26%), या अनुसूची V (2.12%) से संबंधित जानवरों का इतनी बड़ी संख्या में के शिकार नहीं किया गया. शिकार किए गए कुल जानवरों में से लगभग 6.66% इन अनुसूचियों में से किसी से संबंधित नहीं थे.

अलग-अलग अनुसूची के जानवरों के शिकार की सबसे प्रमुख विधि का विश्लेषण करने पर हमने पाया कि 'अज्ञात/लागू नहीं' और 'अन्य' विधि के सभी मामलों में से आधे-से-अधिक यानी कि क्रमशः 52.9% और 51.4% केवल अनुसूची III के जानवरों के शिकार से संबंधित थे. वहीं इन दो तरीकों से जुड़े मामलों में से क्रमशः 23.6% और 27.8% मामले अनुसूची I के जानवरों के शिकार के थे और शेष अन्य अनुसूचियों से संबंधित थे.

खाल जब्त करने के सभी 14 मामलों में से आधे-आधे अनुसूची I और अनुसूची III के जानवरों से संबंधित थे. 'ग्रामीणों द्वारा शिकार' के कुल 19 मामलों में से 15 मामले अनुसूची III और दो-दो मामले अनुसूची I एवं II के जानवरों से संबंधित थे. जहर देकर मारने के कुल 40 मामलों में से 24 (60%) अनुसूची I, 12 (30%) अनुसूची III और शेष दो (5%) मामले अनुसूची V के जानवरों के थे. पालतू कुत्तों द्वारा शिकार करने के 83.3% मामले (कुल 48 में से 40 मामले) अनुसूची III के जानवरों से संबंधित थे.

'फंदा लगाकर' शिकार किए गए कुल 205 मामलों में से, 98 मामले (47.8%) अनुसूची III, 43 मामले (21.1%) अनुसूची I और बाकी मामले अन्य अनुसूचियों के जानवरों से संबंधित थे. बिजली के तार बिछाकर शिकार करने के कुल 167 मामलों में से 91 मामले (54.5%) अनुसूची III जानवरों और 53 मामले (31.7%) अनुसूची I के जानवरों के थे. भाला, कुल्हाड़ी जैसे स्थानीय औजारों द्वारा शिकार के कुल 178 मामलों में से 136 मामले (76.4%) अनुसूची III के जानवरों के थे.

यह विश्लेषण अनुसूची I और अनुसूची III के ऐसे मामलों का विवरण प्रस्तुत करता हैं जिनमें विशिष्ट तरीकों जैसे स्थानीय हथियारों द्वारा शिकार, 'फंदा लगाकर' शिकार, पालतू कुत्तों द्वारा शिकार का इस्तेमाल किया जाता है. इन तरीकों को आमतौर पर अनुसूची III के जानवरों, जैसे जंगली सूअर, के खिलाफ आत्मरक्षा उपायों के रूप में इस्तेमाल किया जाता है. ये विवरण फील्डवर्क से प्राप्त हमारे इस अवलोकन की पुष्टि करते हैं कि बड़ी संख्या में लोग अनुसूची I के जानवरों को गैरइरादतन अपनी आत्मरक्षा में मारते हैं जबकि अनुसूची III के ऐसे जानवर मारे जाते हैं जो उनकी फसलों को नष्ट करते हैं.

IV. मामलों की स्थिति

इस खंड में हमने वन विभाग द्वारा 2016 से 2020 तक दर्ज सभी 1,414 मामलों के कानूनी निष्पादन की अद्यतन स्थिति का विश्लेषण किया है. यह अन्य निष्कर्षों के साथ-साथ लंबित मामलों और दोषी करार दिए गए लोगों की संख्या एवं लगाए गए जुर्माने की जानकारी प्रदान करता है.

हमारे समग्र डेटा सेट, जिसमें 2016 और 2020 के बीच दर्ज 1,414 मामले शामिल हैं, में से 95% से अधिक मामले अभी भी लंबित हैं; इनमें से 727 मामले (51%) अदालत में लंबित थे तथा 627 मामले (44.3%) विभागीय कार्यवाही के अधीन थे. सिर्फ 13 मामलों (0.9%) का निपटारा समझौते द्वारा, सब-डिवीज़नल ऑफिसर (एसडीओ) को प्रदत्त शक्ति के प्रयोग से, किया गया. 35 मामलों (2.4%) को बंद कर दिया गया था और नौ मामलों (0.63%) में निर्णय सुनाया गया; हालाँकि इनमें से केवल 6 में निर्णय का विवरण दर्ज किया था.

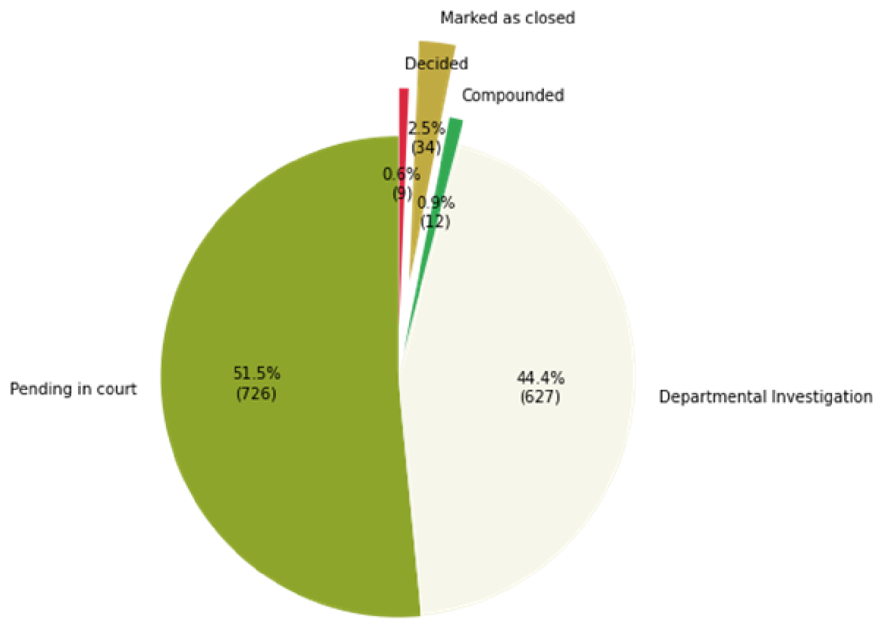

चित्र 3.छः मामलों की स्थिति के अनुसार उनका वितरण

इस प्रकार, हम देखते हैं कि बड़ी संख्या में दर्ज मामलों में से लगभग सभी मामले लंबित हैं और दोषसिद्धि की दर बहुत कम है.

जिन मुकदमों में फैसला सुनाया गया, उनके विवरण से हमें पता चला कि केवल चार अभियुक्त निर्दोष पाए गए.

क. कारावास

सजा के रूप में कारावास की अवधि में व्यापक भिन्नता सामने आई, जिसमें एक महीने से कम से लेकर पांच साल से अधिक तक की सजा दिए जाने के उदाहरण मिले. एक आरोपी को एक महीने से कम और दो को एक से तीन महीने की सजा सुनाई गई. अन्य तीन को क्रमशःएक साल, चार साल और पाँच वर्ष से अधिक की सजा का दोषी ठहराया गया.

ख. जुर्माना

केवल दो आरोपियों को जुर्माना भरने के बाद छोड़ा गया. जिन पांच दोषियों पर जुर्माना लगाया गया था उनके जुर्माने की राशि में बहुत अंतर, 200 से ₹5 लाख तक, था. इन आरोपियों पर क्रमशः ₹200, ₹1,500, ₹2,000, ₹10,000 और ₹5,00,000 का जुर्माना लगाया गया.

हालांकि, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि वन विभाग सार्वजनिक रूप से उपलब्ध ऑनलाइन रिकॉर्ड में मामले की स्थिति, कारावास और जुर्माने के भुगतान की जानकारी नियमित रूप से अपडेट नहीं करता है.

चित्र 3.ज: मामलों की अद्यतन स्थिति के अनुसार मामलों का चित्रण.

निष्कर्ष

राज्य में वन विभाग द्वारा 2016 और 2020 के बीच दर्ज किए गए 1,414 मामलों के आंकड़े यह बताते हैं कि पुलिस अधिकारियों के साथ-साथ वन विभाग के अधिकारियों ने भी अभियोजन संबंधी मानकों का पूरी तरीके से पालन नहीं किया. क्षेत्र में हमारे द्वारा किए गए साक्षात्कारों से इसकी पुष्टि होती है कि शिकार के कथित तरीकों और बरामदगी या जब्ती के बीच बहुत ज्यादा विसंगतियां हैं और अपराध के घटनास्थल की जानकारी अस्पष्ट रूप से दर्ज की जाती है. साथ ही यह भी सामने आया कि अनुसूची I के जानवरों और अनुसूची III के जानवरों, जैसे बड़े पैमाने पर लोगों की आजीविका और फसल को नुकसान पहुंचाने वाले जंगली सूअर, की दुर्घटना और आत्म-रक्षा की कार्रवाई में मौत होती है.

इस विश्लेषण से वन विभाग द्वारा एक ही मामले में कई लोगों को आरोपित करने की प्रवृत्ति का भी पता चलता है; 10 में से हर चार मामलों में कम-से-कम दो से पांच लोगों पर आरोप लगाया जाता है. इसके अलावा, जानवरों के शिकार के लिए आरोपित व्यक्तियों का जाति श्रेणियों के आधार पर वर्गीकरण से पता चलता है कि एसटी को डब्ल्यूपीए के तहत असमान रूप से, कुल आरोपितों का 40%, आरोपित किया जाता है.

सीमांत समुदायों को बड़े पैमाने पर निशाना बनाए जाने और मामलों को दर्ज करने संबंधी विसंगतियों के संदर्भ में, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि कुल 1,414 मामलों में से 95% से अधिक मामले बिना निर्णय के लंबित हैं. कुल मिलाकर, डब्ल्यूपीए के तहत वन विभाग द्वारा दर्ज मामलों के विश्लेषण से पता चलता है कि डब्ल्यूपीए के तहत मामला दर्ज करना जितना आसान है, इसके तहत आरोपित व्यक्तियों के लिए अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करना और वन संरक्षण के नाम पर किए जाने वाले अपराधीकरण से सुरक्षा प्राप्त करना उतना ही मुश्किल है.

8. वन विभाग राज

क्षेत्र से प्राप्त अंतर्दृष्टि

यह अध्याय मंडला और बालाघाट में विभिन्न हितधारकों के साथ किए गए साक्षात्कारों और बातचीत के निष्कर्षों पर चर्चा करता है. जिन हितधारकों का साक्षात्कार लिया गया उनमें शामिल थे: आरोपी व्यक्ति और उनके परिवार, वन विभाग के नौकरशाह और उसके फील्ड ऑफिसर्स, पुलिस अधिकारी, राज्य एवं आरोपी व्यक्तियों - दोनों के वकील, कार्यकर्ता, संरक्षणवादी और स्थानीय नागरिक समाज संगठन. मार्च 2022 और सितंबर 2022 के बीच कुल 45 साक्षात्कार किए गए. इस अध्याय की शुरूआत कानून और राजनीतिक पृष्ठभूमि प्रदान करने से होती हैं जिससे वन्यजीव कानून और कानून में निहित संरक्षण संबंधी दृष्टिकोण संचालित होता है और जो बतलाता है कि मंडला और बालाघाट क्षेत्र के लिए इसके निहितार्थ क्या है. अगला खंड कान्हा राष्ट्रीय उद्यान के पीए में लागू किए जाने वाले आपराधिक कानून की जमीनी स्थिति के बारे में बताता है. यह खंड कानून के विशिष्ट प्रक्रियात्मक पहलुओं का भी विश्लेषण करता है, जिनमें गिरफ्तारी, जमानत और वन आश्रित समुदायों द्वारा वहन किए जाने वाले खर्च से संबंधित विश्लेषण शामिल हैं. अध्याय का अंतिम भाग विभिन्न हितधारकों के बारे में चर्चा करता है जो समुदायों और वन विभाग की बातचीत में मध्यस्थता करते हैं और कानून का कार्यान्वयन साकार करते हैं.

I. आपराधिक कानून, संरक्षण और वन्यजीव सुरक्षा

डब्ल्यूपीए को वनों के औपनिवेशिक नियंत्रण के मौजूदा संदर्भ में लाया गया था, ताकि वनों और इसके जानवरों एवं पेड़-पौधों को आईएफए 1927 के तहत प्रदान की जाने वाली सुरक्षा का विस्तार किया जा सके. स्टॉकहोम घोषणा के आधार पर किए जा रहे पर्यावरण संरक्षण के अंतर्राष्ट्रीय प्रोत्साहनों और आंशिक रूप से तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के बाघों के प्रति लगाव से इसे बढ़ावा मिला. सतत विकास और सार्वजनिक जिम्मेदारी सिद्धांत जैसी अवधारणाओं के माध्यम से पर्यावरण कानून के सिद्धांतों के क्रमिक विकास के कारण, अन्य बातों के साथ-साथ पर्यावरण अपराधों की श्रेणी के जरिए आपराधिक कानून को भी पर्यावरणवाद को प्रचारित-प्रसारित करने के लिए बढ़ावा दिया गया.

उस समय आईएफए में पहले से ही कुछ वन अपराध शामिल थे, जिनके मुताबिक संरक्षित या आरक्षित वनों में लकड़ी काटने, जंगलों में आग लगाने या खेती के लिए भूमि साफ करने जैसे कार्यों को आपराधिक करार दिया गया था. वन्यजीव अपराध भी पहले के कानून में मौजूद थे, जिनके अनुसार बिना लाइसेंस के एक विशेष समय अवधि में कुछ प्रजातियों/पक्षियों का शिकार अपराध था. हालांकि, इन प्रावधानों को इस विचार पर तैयार किया गया था कि वनों पर सरकार का स्वामित्व है, जैसा कि 1855 के आईएफए में वर्णित था. इसी विचार पर वर्तमान कानून आधारित है. वन में किए गए अपराधों के लिए व्यक्तियों (चाहे वन आश्रित समुदाय या कोई अन्य) को जिम्मेदार ठहराया गया और उत्पादन या संरक्षण के लिए राज्य द्वारा वनों के उपयोग को वैध माना गया था. आपराधिक कानून इस कारण से उपनिवेशवाद का एक साधन था जिसने वनों पर निर्भर समुदायों को वनों के विनाश का अपराधी माना, लेकिन इसने उत्पादन के लिए वनों के अंधाधुंध उपयोग के लिए उपनिवेशवादियों को समान रूप से अपराधी नहीं ठहराया.

वन्यजीव कानून भी, संरक्षण और 'वैध उद्देश्य' संबंधी राज्य के अधिकार की इस नींव पर आधारित है. अध्याय 2 (संबंधित दस्तावेजों की समीक्षा) डब्ल्यूपीए से पहले और बाद के घटनाक्रमों, शिकार के देशज तरीकों का आपराधीकरण किए जाने से जुड़े सवालों और समय के साथ आकार लेने वाले वन प्रशासन के प्रतिरोध के स्वरूपों के बारे में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है. डब्ल्यूपीए द्वारा प्रस्तावित फॉर्ट्रेस कंजर्वेशन (ज़बरन

विस्थापन या मौजूदा निवासियों के बहिष्करण द्वारा वन्यजीवों के लिए संरक्षित क्षेत्रों का निर्माण) के विचार ने समुदायों को उनके जंगलों से अलग कर दिया है, उन्हें 'संरक्षण के लिए विनाशकारी' मानकर सुरक्षा के विशिष्ट क्षेत्र, जिसकी सीमाओं का अतिक्रमण नहीं किया जा सके, बनाने के नाम पर विस्थापित कर दिया है. आदि आश्रित समुदायों को जाति आधारित समाज, जो कि शोषण और भेदभाव पर आधारित है, में विस्थापित कर दिया गया है और आजीविका के लिए अक्सर उन्हें असंगठित क्षेत्र में काम खोजने के लिए मजबूर किया जाता है. यह अध्याय उन अपराधों के अनुभवों पर आधारित है जिनकी मध्यस्थता वन विभाग द्वारा की गई और वन्यजीव संरक्षण में आपराधिक कानून की भूमिका पर सवाल उठाता है. यह देश के सबसे पुराने बाघ अभयारण्यों में से एक, कान्हा राष्ट्रीय उद्यान के माध्यम से संरक्षित क्षेत्रों में किए जाने वाली कार्रवाइयों की वैधता की पड़ताल करता है. इस अनुभवजन्य सामग्री के आधार पर, यह अध्याय वन अपराधों के 'गैर-अपराधीकरण (डिक्रिमिनलाइजेशन)' एवं डब्ल्यूपीए को और सशक्त करने के माध्यम से इस आपराधिक कानून में सुधार संबंधी हाल के मांगों पर अंतर्दृष्टि प्रदान करता है.

क. कान्हा राष्ट्रीय उद्यान की पृष्ठभूमि

कान्हा टाइगर रिजर्व प्रशासनिक रूप से एमपी के मंडला और बालाघाट जिलों में स्थित है और इसमें बफर जोन (टाइगर रिजर्व के मुख्य क्षेत्र से सटा इलाका) में स्थित 61 गांव शामिल हैं. इन गांवों में मुख्य रूप से गोंड और बैगा (जिन्हें विशेष रूप से संवेदनशील जनजातीय समूहों (पीवीटीजी) परिवारों के रूप में वर्गीकृत किया गया है) आबादी रहती है.

कान्हा में और उसके आसपास दो प्रकार के गाँव हैं - राजस्व गाँव और वन ग्राम. राजस्व गांव राज्य की औपचारिक प्रशासनिक व्यवस्था का हिस्सा होते हैं. दूसरी ओर, वन ग्राम, वन विभाग द्वारा बनाई गई प्रशासनिक श्रेणी है, जहाँ भूमि पर अधिकार केवल विभाग का होता है और यहाँ के निवासी वसीयत के मुताबिक जोतदार होते हैं. वन विभाग की गतिविधियों, जैसे लकड़ी की कटाई, के लिए बड़ी श्रम शक्ति की मांगों को पूरा करने के लिए इनका निर्माण किया गया था. वर्तमान में, मंडला में 84 और बालाघाट में 70 वन ग्राम हैं, जिनमें से 19 वन ग्राम कान्हा क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं.

ख. जबरन पुनर्वास और 'उचित प्रक्रिया'

डब्ल्यूपीए संरक्षित क्षेत्र (पीए) के निर्माण से प्रभावित लोगों के अधिकारों के निपटारे और पुनर्वास/ विस्थापन की प्रक्रिया निर्धारित करता है. निम्नलिखित खंड में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि कैसे 'उचित प्रक्रिया' को निष्प्रभाव बना दिया गया है और जंगल में रहने वाले समुदायों के अधिकारों की कीमत पर पीए बनाए गए हैं.

अ. डब्ल्यूपीए के तहत अधिकारों का निपटारा

डब्ल्यूपीए उन व्यक्तियों के अधिकारों के निपटारे का प्रावधान करता है, जो पीए के सीमांकन से पहले क्षेत्र विशेष में बसे हुए हैं. अर्थात पीए घोषित करने की गजट संबंधी अंतिम अधिसूचना से पहले, उस क्षेत्र के कलेक्टर द्वारा उस क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों के अधिकारों के 'स्थिति', 'प्रकृति' और 'सीमा' का निर्धारण किया जाता है. हालांकि, धारा 26ए के मुताबिक इन अधिकारों को उन मामलों में समाप्त होने से पहले निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है जहां भूमि आरक्षित वनों से संबंधित है. अन्य मामलों में धारा 22 के तहत कलेक्टर द्वारा डब्ल्यूपीए की धारा 24 के अंतर्गत इन अधिकारों के 'अधिग्रहण' की प्रक्रिया

को आगे बढ़ाने से पहले दावे को अस्वीकार या स्वीकार किया जाता है. ऐसा करते हुए, वे किसी क्षेत्र को पीए की सीमा से बाहर कर सकते हैं, भूमि संबंधी और अन्य अधिकार प्राप्त कर सकते हैं या पीए में अधिकारों को मान्यता देने की अनुमति दे सकते हैं. वन आश्रित समुदायों के विभिन्न पारंपरिक अधिकारों को मान्यता देने के लिए कलेक्टर द्वारा किसी तर्कसांगत आदेश या दिशा-निर्देश को ध्यान में रखे जाने की जरुरत नहीं है और न ही उनके लिए कोई समय सीमा तय की गई है, यह उन्हें डब्ल्यूपीए के तहत असीमित शक्ति प्रदान करता है.

तुषार दाश ओडिशा के शोधकर्ता और कार्यकर्ता हैं और इस शोध के लिए उनका भी साक्षात्कार लिया गया. उन्होंने बताया कि 2006 से पहले, बाघ अभयारण्यों की अधिसूचना ने अधिकारों के निपटारे की प्रक्रिया पर ध्यान दिए बगैर उन्हें आम तौर पर निष्प्रभावी बना दिया और उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया. अधिकारों को असंगत तरीके से मान्यता दी गई है और जहां ऐसा किया भी गया है, वहां वे मुख्य रूप से व्यक्तिगत वन अधिकारों से संबंधित हैं. दाश ने यह भी कहा कि इन अधिकारों के अनुरूप डब्ल्यूपीए के तहत जिन प्रक्रियाओं का पालन किया जाना है, उन के बारे में बहुत कम स्पष्टता है.

ब. वन अधिकार अधिनियम, 2006 के बाद अधिकारों का निपटारा

जैसा कि समीक्षा किए गए दस्तावेजों में प्रकाश डाला गया है, वन में रहने वाले समुदायों ने वन प्रशासन और संरक्षण के इस दृष्टिकोण का विरोध किया. इन समुदायों के प्रतिरोध और संघर्ष के परिणामस्वरूप 1996 में पंचायतों के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार), अधिनियम (पीईएसए) और 2006 में एफआरए पारित हुआ. ये दोनों कानून और विशेष रूप से एफआरए, वन आश्रित समुदायों के साथ किए गए 'ऐतिहासिक अन्याय' को स्वीकार करते हैं और वनों के प्रधान संरक्षक के रूप में उनके अधिकार को मान्यता देता है. एफआरए ने विस्तृत तरीके से वन आश्रित समुदायों के अधिकारों की गणना की है. भूमि पर निर्भरता संबंधी व्यक्तिगत अधिकारों को मान्यता देने के अलावा, वनों के विकास और संरक्षण के लिए सामुदायिक अधिकार, पारंपरिक ज्ञान पर बौद्धिक संपदा अधिकार और विकासात्मक गतिविधियों संबंधी अधिकारों को आरक्षित वनों सहित सभी वन क्षेत्रों में भी मान्यता दी गई है. डब्ल्यूपीए के तहत प्रक्रिया को अधिव्यापित (ओवरलैप) करते हुए, इन अधिकारों की प्रकृति और सीमा को पहचानने के लिए कलेक्टर के बजाय ग्राम सभा को संरक्षक बनाया गया है. निम्नलिखित खंड में, हम यह सामने लाएंगे कि कैसे इन सबके बावजूद, पीए में अधिकारों की मान्यता प्रदान करना बंद हो गया है.

एफआरए के धारा 2(बी) और 4(2) में 'महत्वपूर्ण वन्यजीव आवास' के रूप में उल्लेखित पीए के कुछ हिस्सों में वनवासियों के अधिकारों की निरंतरता अपवाद है. यह कहता है कि जब तक अधिकारों को पूर्ण रूप से मान्यता नहीं मिल जाती है, तब तक ऐसे संरक्षित क्षेत्रों में अधिकारों के किसी भी पुनःस्थापन या उनमें संशोधन की अनुमति नहीं होगी. यह संबंधित राज्य सरकार से इसकी जांच करने को कहता है कि क्या अधिकार धारकों की गतिविधियाँ प्रजातियों और उनके आवास को स्थाई क्षति पहुँचाने की प्रकृति की हैं और यह निर्णय लेने को कहता है कि क्या सह-अस्तित्व तर्कसंगत नहीं है. ऐसे मामले में, पुनर्वास पैकेज प्रस्तावित किया जाना चाहिए और इसे स्थानीय ग्राम सभा द्वारा स्वीकृत कराया जाना चाहिए. देश के किसी भी टाइगर रिज़र्व में इस शर्त का पालन नहीं किया गया है जहां महत्वपूर्ण वन्यजीव आवास को चिन्हित करने वाले तर्कसंगत आदेश/अधिसूचनाएं सार्वजनिक की गई हैं. इसके बजाय, यह आम समझ यह है कि एफआरए के बावजूद संरक्षित क्षेत्रों में कोई बदलाव नहीं किया जाना चाहिए. इसके अलावा, 2017 में, राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण (एनटीसीए) ने डब्ल्यूपीए और एफआरए की बंदोबस्त प्रक्रियाओं

को संबद्ध करने की मांग की और आदेश जारी कर क्रिटिकल टाइगर हैबिटेट (सीटीएच) क्षेत्रों में उचित दिशा-निर्देश जारी नहीं किए जाने तक वन अधिकारों को लागू करने से इनकार किया. 2018 में, इन दिशानिर्देशों को सार्वजनिक परामर्श के बिना प्रकाशित किया गया था, लेकिन इसने विशेषज्ञ समिति के माध्यम से महत्वपूर्ण वन्यजीव आवासों के सीमांकन की प्रक्रिया को विस्तार से प्रस्तुत किया, हालाँकि पीए के कोर एरिया बनाए गए पूर्व के विशिष्ट क्षेत्रों पर कोई चर्चा नहीं की गई थी. ये कोर एरिया अभी भी ऐसे विशिष्ट क्षेत्र हैं जहां प्रवेश करने पर भी मुकदमा दर्ज किया जाता है. बालाघाट के वकीलों के साथ बातचीत से पता चला है कि कोर और बफर क्षेत्रों का कोई स्पष्ट सीमांकन नहीं होने के बावजूद डब्ल्यूपीए से संबंधित मामले छोटे-छोटे कारणों से दायर किए जाते हैं. वेंकट रामानुजम, अट्री (ATREE) के स्कॉलर, कहते हैं कि कई पीए की अंतिम अधिसूचनाएं अभी तक सार्वजनिक नहीं की गई हैं और हर बार सीमाओं के निर्धारण या इसके विस्तार की ज़रूरत पड़ने पर अंतरिम अधिसूचनाओं द्वारा जल्दबाजी में भूमि का सीमांकन किया जाता है. ऐसे मामले में, जहां भूमि का स्पष्ट सीमांकन नहीं किया गया है और अधिकार पूरी तरह से निर्धारित नहीं किए गए हैं, लेकिन 'स्वैच्छिक पुनर्वास' अभियान के माध्यम से लोगों को इन क्षेत्रों से बाहर धकेल दिया गया है, क्या ऐसे क्षेत्रों के मामलों के लिए डब्ल्यूपीए के तहत मुकदमा चलाना वैध माना जा सकता है?

संरक्षणवादियों का तर्क है कि बंदोबस्ती प्रक्रियाओं और एफआरए एवं डब्ल्यूपीए के अधिकारों के बीच कोई टकराव नहीं है. उनका यह भी दावा है कि एफआरए का दायरा सीमित होने के कारण इसमें पर्याप्त स्पष्टता है. एफआरए की धारा 13 कहती है कि इस अधिनियम और पीईएसए (पेसा) के तहत स्पष्ट अधिसूचना के बिना, अधिनियम के प्रावधान केवल पूरक होंगे और पहले से लागू किसी अन्य कानून, जैसे डब्ल्यूपीए को रद्द नहीं करेंगे. इसका मतलब है कि डब्ल्यूपीए एफआरए के ऊपर लागू होता है. वकील विजय मरकाम बालाघाट में अवैध प्रवेश के कई मामलों की पैरवी करते हैं. वे उदाहरण देते हुए कहते हैं कि डब्ल्यूपीए धारा 17ए के तहत गैर-अभियोजन की संभावना प्रदान करता है, जहां प्रामाणिक उद्देश्यों के लिए पौधे एकत्र करने की अनुमति है. हालाँकि, इससे संबंधित कानूनी स्पष्टता के अभाव के कारण अभियोजन वर्षों तक जारी रहता है.

तुषार दास ने हाल के उन घटनाक्रमों पर भी प्रकाश डाला जो वन आश्रित समुदायों को सुरक्षा प्रदान करते हैं. ओडिशा, कर्नाटक और छत्तीसगढ़ में, राज्य वन विभागों द्वारा अभयारण्यों और राष्ट्रीय उद्यानों में सामुदायिक वन अधिकारों को मान्यता दी गई है और ये कम-से-कम एफआरए के तहत प्रदत्त व्यक्तिगत अधिकारों, 4 हेक्टेयर तक सीमित, से बेदखली से सुरक्षा की गारंटी देते हैं. जन संघर्ष मोर्चा से जुड़े वन अधिकार कार्यकर्ता विवेक पवार ने कहा, "हालांकि, वन्यजीवों के लिए अधिक आवास उपलब्ध कराने के लिए हर कुछ वर्ष में अभयारण्यों और राष्ट्रीय उद्यानों की सीमाओं को बढ़ाना एक सतत चिंता का विषय है और अधिकारों के लिए एक चुनौती है."

स. कान्हा में विस्थापन से जुड़े सवाल

कान्हा टाइगर रिजर्व भारत के सबसे बड़े पीए में से एक है. इसे 1955, 1964 और 1970 में तीन अलग-अलग खंडों में राष्ट्रीय उद्यान और 1973-74 में टाइगर रिज़र्व घोषित किया गया. उस समय 24 गांव (करीब 650 परिवार) टाइगर रिजर्व की सीमा से बाहर विस्थापित हुए थे.

अपने क्षेत्र भ्रमण के दौरान हमने पीए बनने के कारण विस्थापित हुए दो गाँवों का दौरा किया. लेकिन यहाँ के ग्रामीणों से बातचीत में हम इन गांवों के विस्थापन से संबंधित कोई भी दस्तावेज हासिल नहीं

कर सके. हालांकि, मंडला के बिछिया में कार्यरत एक सामाजिक कार्यकर्ता ने कहा कि इस अधिनियम ने बैगा समुदाय को बहुत ज्यादा प्रभावित किया है. कार्यकर्ता ने कहा, बैगा समुदाय उस हिस्से में रहते हैं जो आज कान्हा का कोर एरिया है और अन्य समुदायों की तुलना में जंगल पर ज्यादा निर्भर है. डब्ल्यूपीए के मुताबिक पीए के सीमांकन और इसकी घोषणा से पहले इसके अंतर्गत रहने वाले लोगों के अधिकारों को सुनिश्चित किया जाना चाहिए. मंडला और बालाघाट में हमने जिन वकीलों और सामाजिक कार्यकर्ताओं का साक्षात्कार लिया, उन्होंने कहा कि जब इन गांवों के पुनर्वास की बात आती है तो ऐसी किसी प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता है. इनमें से एक गांव के बैगा परिवार के अनुभवों का निम्नलिखित विवरण बताता है कि ये परिवार अभी भी अपने अधिकारों को मान्यता दिलाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं.

केस स्टडी #3 डब्ल्यूपीए और विस्थापन

मंडला की C* तहसील के B* पंचायत में A* एकमात्र वन ग्राम है. इस गांव के लोगों को 1970 के दशक में कान्हा टाइगर रिजर्व के कोर एरिया से विस्थापित कर यहां बसाया गया था. विस्थापित होने वाले गाँवों के नाम माटेगांव और ओट्टाकाटा थे. हालांकि ग्रामीणों के पास इस विस्थापन से संबंधित कोई कागजात या दस्तावेज नहीं है.

सुरेश बैगा (बदला हुआ नाम) और उनके परिवार के पास कोर एरिया में 30 एकड़ जमीन थी जिसमें वे झूम खेती करते थे. विस्थापन के दौरान उन्हें इस नए गांव में करीब 6.15 एकड़ जमीन मुआवजे के तौर पर दी गई थी. इसके अलावा, अब इस गांव के परिवारों की महुआ जैसे अन्य आवश्यक वन उत्पाद तक पहुंच नहीं है, जो समुदाय के जीवन और आजीविका का महत्वपूर्ण हिस्सा है. बैगा परिवारों (गाँव में 15 घर) की स्थिति अन्य समुदायों की तुलना में खराब है क्योंकि बैगा अपनी आजीविका के लिए जंगल पर अधिक निर्भर हैं, लेकिन उनके व्यक्तिगत और सामुदायिक वन अधिकारों के दावों का अभी तक निपटारा नहीं किया गया है.

अन्य गाँवों, जिन्हें बाद में फिर से बसाया गया और जो 'राजस्व गाँव' हैं, के विपरीत इंद्रवन अभी भी एक वन ग्राम है. वन ग्राम के रूप में प्राप्त सभी वन अधिकारों तक उनकी पहुंच के बारे में कुछ अस्पष्टता है. इस गांव के उदहारण से पता चलता है कि डब्ल्यूपीए में निर्धारित उस किसी भी प्रक्रिया का शायद ही पालन किया गया जिसका वर्णन ऊपर है.

II. कानून की जमीनी हकीकत: अपराध और इनके कानूनी परिणाम

डब्ल्यूपीए संरक्षित और गैर-संरक्षित वनों - दोनों में शिकार पर रोक लगाता है - और कुछ अपवादों के साथ, वन उपज के लिए संरक्षित क्षेत्रों तक पहुंच को भी अपराध बनाता है. हमें अपने फील्डवर्क के दौरान मिले मामलों का विवरण निम्नलिखित खंड में है जो कुछ चिंताजनक प्रवृत्तियों की पहचान करते हैं. यह खंड डब्ल्यूपीए अधिनियम के तहत गिरफ्तारी और जमानत से संबंधित मुद्दों का भी विश्लेषण करता है.

क. विभिन्न प्रकार मामले

जैसा कि पहले बताया गया है, मैकाल पहाड़ियों के गोंड और बैगा समुदायों की परंपराओं, संस्कृति और धार्मिक प्रथाओं से शिकार निकटता से जुड़ा हुआ है. हालांकि, समय के साथ इस क्षेत्र में शिकार गतिविधियों

में भारी कमी आई है. मांडला जिले के पिंडराई माल गांव के लोगों ने बातचीत में हमें बताया गया कि जंगलों तक सीमित पहुंच, वन अधिकारियों के डर और जंगलों में जानवरों की घटती संख्या के कारण बैगा समुदाय ने इस पारंपरिक व्यवसाय को छोड़ दिया है. समुदाय अब मुख्य रूप से खेती पर निर्भर करता है. बैगा परंपरागत रूप से गर्रा मांस खाते हैं, जो बाघ के शिकार का बचा हुआ मांस होता है. लेकिन डब्ल्यूपीए के तहत केवल मांस का सेवन, यहां तक कि जानवर को मारे बिना भी, एक अपराध है.

समुदाय के लोगों ने हमें बताया कि वे अपने कुछ धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान ऐतिहासिक रूप से जंगली सूअर की बलि देते हैं. उनका दावा है कि वन विभाग ने इन प्रथाओं को रोकने के लिए डब्ल्यूपीए को अब हथियार बना लिया है. ढाबा नाम के एक गाँव में, स्थानीय बिबरी उत्सव में देवी को सूअर, बकरी या मुर्गी जैसे जानवरों की बलि चढ़ाई जाती है. ऐसे ही एक उत्सव के दौरान, वन अधिकारियों ने ग्रामीणों को घेर लिया और उन पर एक हिरण की बलि देने का आरोप लगाया. ग्रामीणों ने जवाब में अधिकारियों को हिरण के शिकार का सबूत देने की चुनौती दी और उन्हें धमकी दी कि ऐसा नहीं करने पर उन्हें क्षेत्र से वापस लौटने नहीं दिया जाएगा. इसके बाद अधिकारियों को अपने आरोप वापस लेने पड़े.

हमारे फील्डवर्क के दौरान, हमने पाया कि डब्ल्यूपीए के तहत कई तरह के मामले दर्ज किए गए हैं. हमने कई मामलों में 'शिकार' के पीछे के कारणों के साथ-साथ शिकार करने के तरीकों को भी समझने की कोशिश की. व्यापार के लिए शिकार के अलावा, डब्ल्यूपीए में निर्धारित शिकार की परिभाषा के तहत शिकार की कई अन्य गतिविधियाँ भी शामिल हैं जो वन आश्रित समुदायों के परंपराओं और संस्कृति का हिस्सा रही हैं और उनकी आत्म-रक्षा की कार्रवाइयों से जुड़ी हैं. नीचे, हमने 'शिकार' के कुछ आम तरीकों का विवरण प्रस्तुत किया है जो इन गांवों में डब्ल्यूपीए के तहत अपराध हैं.

ख. फसलों की रक्षा जिस दौरान दुर्घटनावश जानवरों की मौत भी हो सकती है

मंडला और बालाघाट में खेतिहर परिवार मुख्य रूप से वर्षा आधारित कृषि करते हैं और अपने भोजन और आय के लिए बड़े पैमाने पर एक मात्र खरीफ फसल पर निर्भर हैं. साक्षात्कारों में, समुदाय के सदस्यों ने कहा कि जंगली सूअर आमतौर पर रात के दौरान झुंड में उनके खेतों में घुस जाते हैं. इन लोगों के अनुसार ये सूअर 40 से 60% तक फसल नष्ट कर देते हैं.

आरोपी व्यक्तियों के साथ हमारे साक्षात्कारों से हमने जाना कि अपने खेतों को वन्यजीवों, विशेष रूप से जंगली सूअरों, से बचाने के कारण उनके खिलाफ आपराधिक कार्रवाई हुई. अपने खेतों की रक्षा के लिए वे या तो फंदा लगाते हैं या रात में जागकर अपने खेतों की निगरानी करते हैं. हमने देखा कि इस प्रकार के ज्यादातर मामले वन सीमा के करीब के खेतों के थे. 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत में, जब बेवर खेती प्रचलित थी, बैगा समुदाय के लोग अपने खेतों को हिरण और सूअर जैसे जानवरों से बचाने के लिए अपने खेतों के चारों ओर रस्सी के जाल का इस्तेमाल करते थे. गर्मियों में, जब फसल की सुरक्षा नहीं करनी पड़ती थी, वे शिकार के लिए धनुष और तीर या भाला का उपयोग करते थे.

इन तरीकों से जानवरों की दुर्घटनावश होने वाली मौतें बहुत से लोगों को तब मुसीबत में डाल दिया है जब विशेष जानवरों से फसल बचाने के लिए खेतों में जाल बिछाया जाता है और इसमें दूसरे प्रकार के जानवर फंस जाते हैं. उदाहरण के लिए, मंडला के एक गांव में ग्रामीणों ने चीतल और सांभर हिरण से अपनी फसल

बचाने के लिए जाल बिछाया था. हालांकि, एक बाघ इस जाल में फंस गया और उसकी मौत हो गई. वन विभाग की कार्रवाई के डर से ग्रामीणों ने बाघ के शव को ठिकाने लगा दिया और उसके नाखून एवं दांत पास की नहर में फेंक दिए. हालांकि बाद में गांव के 11 लोगों पर बाघ के शिकार के आरोप में मामला दर्ज किया गया था. चूंकि, बाघ अनुसूची I के तहत संरक्षित जानवर है, इसे डब्ल्यूपीए के तहत गंभीर अपराध माना जाता है. ग्रामीणों को हर मामले में अपनी फसलों की रक्षा करने और दुर्घटनावश होने वाली मौतों के डर के बीच चयन करना पड़ता है.

ग. झूठे या बढ़ा-चढ़ाकर पेश किए गए मामले

बैगा और गोंड समुदायों की संस्कृति और परंपराओं ने वन विभाग को उनके खिलाफ झूठे मामले दर्ज करने या कुछ को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने का मौका दिया है. 2019 के एक मामले में, पालतू सूअरों का एक झुंड गांव के तालाब में कूद गया और उनमें से एक छोटा सुअर डूब गया था. यह देखकर सात युवकों का एक समूह, जिनमें से एक नाबालिग था, सुअर के पीछे गया और उसका शिकार किया. जब वन अधिकारियों को इस घटना के बारे में पता चला, तो उन्होंने इन युवकों को जंगली सूअर के शिकार के आरोप में गिरफ्तार कर लिया. हालांकि युवकों ने पहले जोर देकर कहा कि उन्होंने किसी जंगली जानवर का शिकार नहीं किया था, बाद में उन्होंने हिरासत में हिंसा का सामना करने के बाद शिकार की बात कबूल कर ली. इसी तरह के एक अन्य मामले में, एक व्यक्ति पर जंगली मुर्गी के शिकार और उसे खाने के लिए मुकदमा चलाया गया था जबकि वास्तव में उन्होंने पालतू मुर्गी पकाकर खाई थी. एक अन्य मामले में एक व्यक्ति अपनी कार में एसटी समुदाय के एक बुजुर्ग व्यक्ति के साथ यात्रा कर रहा था. रास्ते में रेंज ऑफिसर ने उन्हें रोका. उनके वाहन में कुछ भी आपत्तिजनक नहीं मिला. हालाँकि, एसटी समुदाय के व्यक्ति के पास पैंगोलिन के शरीर के दो छोटे हिस्से मिले, जो पारंपरिक रूप से औषधीय जरूरतों के लिए उपयोग किए जाते हैं. इसके बाद दोनों लोगों पर 18 किलो पैंगोलिन के अवशेष के साथ यात्रा करने का आरोप लगाया गया. उच्च न्यायालय से जमानत मिलने से पहले उन्हें डेढ़ साल जेल में बिताने पड़े.

घ. अवैध शिकार

संरक्षणवादियों और वन विभाग के अनुसार, अधिनियम मुख्य रूप से व्यावसायिक व्यापार के लिए किए जाने वाले अवैध शिकार को प्रतिबंधित करता है. हालांकि हमारे समक्ष ऐसा कोई मामला सामने नहीं आया. वन विभाग और संरक्षणवादी इस बात से सहमत हैं कि इन हिस्सों में बाघ का शिकार बहुत ही असाधारण बात है और ऐसा केवल विरले मामलों में ही बाहरी लोगों (वे लोग जो इन वन आश्रित समुदायों का हिस्सा नहीं हैं) के कहने पर किया जाता है. कान्हा में व्यावसायिक व्यापार के लिए शिकार करना काफी दुर्लभ है, इस तथ्य को वन विभाग ने खुद स्वीकार किया है. ऐसा इसलिए है क्योंकि इन समुदायों को जंगल से दातुन लाने की अनुमति भी नहीं है. वन विभाग साप्ताहिक बाजारों में वनोपज की खरीद-बिक्री देखने के लिए गश्त करता है और रिश्वत वसूलता है. फिर भी, हम पाते हैं कि कान्हा में बड़ी संख्या में शिकार के मामले दर्ज किए जाते हैं और जंगल में शिकार करने वाले चाहे जो हों, ये मामले हमेशा बैगा और गोंड के खिलाफ दर्ज किए जाते हैं.

इसके अलावा, ऐसे मामलों में फसल नुकसान का मुआवजा मिलना मुश्किल है. वन विभाग जीवन की क्षति और घायल होने संबंधी दावों पर कार्रवाई करता है, लेकिन फसल नुकसान के दावों का निपटारा राजस्व विभाग द्वारा किया जाता है. हालांकि यह मुद्दा इस शोध के दायरे से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित नहीं

था, मगर हमने ऐसे उदाहरण दर्ज किए हैं जहां लोगों ने अपर्याप्त मुआवजा मिलने या मुआवजा प्राप्त करने में कठिनाई की शिकायत की.

ड. शिकार का तरीका:

अपने फील्डवर्क से, हमने जाना कि पारंपरिक शिकार में जंगल के नक़्शे की जानकारी का उपयोग करना शामिल होता है. वनों के विशिष्ट क्षेत्र होते हैं जहाँ की मिट्टी खारी होती है, जिन्हें साल्ट लिक्स (वह स्थान जहाँ जानवर ज़मीन से नमक चाटने जाते हैं) कहा जाता है. सांभर और चीतल आमतौर पर ऐसे क्षेत्रों में आते हैं और आवश्यक पोषक तत्वों के लिए मिट्टी चाटते हैं. समुदाय ऐसे जानवरों का शिकार करने के लिए इन क्षेत्रों पर नजर रखते हैं.

जंगली सूअर जैसे अधिक खूंखार जानवरों के शिकार के लिए कुल्हाडी जैसे उपकरणों का भी उपयोग किया जाता है. कुछ मामलों में, जानवर को मारने के लिए बारूद के गोले (विस्फोटक) पर लिपटे मांस का भी उपयोग किया जाता है. इसके अलावा, अपने खेतों को जंगली सूअर और अन्य शाकाहारी जानवरों से बचाने के लिए बिजली के तार का घेरा बिछाया जाता है. मछली पकड़ने के लिए, ग्रामीण केवल अपने हाथों का इस्तेमाल करते हैं और कभी-कभी वे जाल से मछली पकड़ते हैं.

च. अधिकारों का अपराधीकरण

यह खंड तीन प्रमुख रुझानों और इनसे संबंधित कानूनी पहलुओं का वर्णन प्रस्तुत करता है जो मंडला और बालाघाट में वन- आश्रित समुदायों की बड़ी आबादी को प्रभावित करते हैं.

अ. जंगली सूअर की समस्या

जैसा कि पिछले खंड में वर्णित है, वन विभाग द्वारा जंगली सूअर, चीतल और सांभर से फसलों की सुरक्षा को डब्ल्यूपीए के तहत अपराध बना दिया गया है. हमारे मात्रात्मक आंकड़े इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं, जिनके मुताबिक वन विभाग द्वारा डब्ल्यूपीए के तहत दर्ज 363 मामले (कुल मामलों का 17.49% से अधिक) जंगली सूअर से संबंधित हैं. सभी हितधारकों के साथ साक्षात्कार से एक आम राय यह उभर कर सामने आई है कि मंडला और बालाघाट के जंगलों में और उसके आसपास जंगली सूअर की आबादी में काफी वृद्धि हुई है और ये जंगल में रहने वाले कृषि आधारित परिवारों के लिए खतरा बन गए हैं. आरोपी व्यक्तियों और उनके परिवारों के 16 में से नौ साक्षात्कारों में, हमने पाया कि उनके मामले सीधे तौर पर जंगली सूअर के शिकार से संबंधित थे.

केस स्टडी #4 जंगली सूअर की समस्या

मंडला के एफ* तहसील के ई* पंचायत में स्थित एक राजस्व गांव डी* है. इस गांव में लगभग 80-85 परिवार हैं और उनमें से लगभग सभी गोंड समुदाय से हैं. रमेश सिंह (परिवर्तित नाम) के खेत में 'शिकार' की एक घटना घटी. यह खेत गांव की सीमा पर जंगल के बगल में स्थित है. सिंह और उनके परिवार ने बातचीत में हमें जंगली सूअर से धान और अन्य फसलों को होने वाले बड़े नुकसान के बारे में बताया. उन्होंने कहा कि रात में फसलों की देखभाल के लिए उन्हें खेत में रहना पड़ता है क्योंकि जंगली सूअर आमतौर पर रात में ही झुंड में खेत में घुस जाते हैं. अपने खेत की रक्षा के लिए, उन्होंने

जीआई लाइव वायर का बना फंदा (जाल) लगाने का फैसला किया. एक रात, एक जंगली सूअर इस जाल में फंस गया और कुल्हाड़ी से मार डाला गया. सिंह व उसके परिवार ने बताया कि पड़ोसी ने इस घटना की शिकायत फ़ॉरेस्ट गार्ड से की. नाकेदार (फ़ॉरेस्ट गार्ड) और डिप्टी रेंजर अगली सुबह उनके घर आए और बचे हुए मांस, हड्डियों और कुल्हाड़ी को जब्त किया और पीओआर (प्रारंभिक अपराध रिपोर्ट) तैयार कर उन्हें गिरफ्तार कर लिया. यह मामला 2019 में दर्ज किया गया था और वन अधिकारियों द्वारा आरोप पत्र दायर कर दिया गया है, लेकिन अभी तक किसी भी गवाही नहीं हुई है.

यह मामला इस पर प्रकाश डालता है कि कैसे वन क्षेत्र के पास स्थित खेतों पर जानवरों के हमले का खतरा विशेष रूप से रहता है. ऐसा जंगली सूअर से जुड़े अन्य मामलों में भी देखा गया. सिंह के मामले और जंगली सूअर से जुडे इसी तरह के अन्य मामलों में, आरोपी 20 दिनों से लेकर तीन महीने तक हिरासत में रहे. जंगली सूअर से संबंधित सभी मामले, जिनके आरोपी व्यक्तियों और इनके वकीलों का हमने साक्षात्कार लिया, मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित हैं. एक मामले में, साक्षात्कार देने वाला व्यक्ति सीधे शिकार में शामिल नहीं था, लेकिन उसने व्यक्तिगत उपभोग के लिए मांस प्राप्त किया था. उनका मामला 12 साल से निचली अदालत में लंबित है. डब्ल्यूपीए मामलों में लंबित मामलों की स्थिति के बारे में मात्रात्मक आंकड़ों से पता चलता है कि कुल 1,414 मामलों में से 95% मामले लंबित हैं. यह हमारे इस निष्कर्ष की पुष्टि करता है कि अनुसूची III और IV से संबंधित जानवरों से संबंधित मामलों के मुकदमों में लंबा समय लगता है और यह प्रक्रिया स्वयं ही आरोपी व्यक्तियों के लिए सजा बन जाती है.

वन विभाग के अधिकारियों के साथ हमारी बातचीत से यह स्पष्ट हो गया कि विभाग भी जंगली सूअर के खतरे से संबंधित लोगों की समस्याओं से पूरी तरह अवगत है. झारखंड स्थित संरक्षणवादी रज़ा काज़मी ने हमारे साथ साक्षात्कार में कहा, "जंगली जानवरों के कारण आर्थिक नुकसान का सवाल पूरी तरह वैध है जिस पर तत्काल ध्यान देने और विभिन्न हितधारक के हस्तक्षेपों के माध्यम से इसके निवारण की जरुरत है". हालांकि, कानून की धारा 11(2) में शारीरिक आत्मरक्षा का प्रावधान है, जिसके तहत अपनी रक्षा के लिए किसी जंगली जानवर को मारा या घायल किया जा सकता है, लेकिन आज जो है, वह कानून आत्मरक्षा में या संपत्ति या फसलों की रक्षा के लिए किसी जंगली जानवर को मारने या घायल करने की अनुमति नहीं देता है, जब तक कि चीफ वाइल्डलाइफ वार्डन लिखित रूप में ऐसा करने की अनुमति नहीं देते'. हालाँकि, राज्य सरकार के पास कुछ प्रजातियों को विनाशकारी घोषित करने और उनके चयनात्मक वध की अनुमति देने का अधिकार है, लेकिन इस अधिकार का अभी तक उपयोग नहीं किया गया है. किसी कानूनी समाधान के अभाव में, गोंड और बैगा समुदाय के लोगों को उनके अपने खेतों और फसलों की रक्षा के लिए अधिनियम के तहत अपराधी बनाया जा रहा है.

ब. डब्ल्यूपीए के तहत मछली पकड़ने का अपराधीकरण

अन्य महत्वपूर्ण प्रवृत्ति जो हमारे फील्डवर्क के दौरान स्पष्ट हुई, वह यह थी कि वन विभाग ने डब्ल्यूपीए के तहत मछली और केकड़े पकड़ने/शिकार करने के मामले दर्ज किए थे. विभाग ने 2016 और 2020 के बीच डब्ल्यूपीए के तहत मछली पकड़ने के 57 मामले दर्ज किए और फील्ड डेटा से पता चला कि इस अवधि के बाद भी ऐसे मामले दर्ज किए गए हैं. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि मछली गोंड और बैगा समुदायों की पारंपरिक आजीविका और आहार का हिस्सा रही है. एफआरए ने अधिनियम की धारा 3(1)(डी) के तहत मछली और स्थानीय जल स्रोतों के अन्य जीवों के उपयोग के सामुदायिक अधिकारों को मान्यता दी है. इसलिए, डब्ल्यूपीए की अनुसूचियों में उल्लिखित मछलियों की प्रजातियों से संबंधित मामलों को

छोड़कर, इस कानून के तहत ऐसे मामले अवैध हैं क्योंकि वे वन आश्रित समुदायों के पहले से मान्यता प्राप्त अधिकारों का अपराधीकरण करते हैं.

केस स्टडी #5 अधिकारों का अपराधीकरण - भाग 1

6 मार्च, 2016 को मछली पकड़ने के एक मामले में दायर चार्जशीट के अनुसार, तीन आरोपी व्यक्तियों को कान्हा टाइगर रिजर्व के कोर एरिया के अंदर अलाव के बगल में सोते हुए तब पकड़ा गया था, जब तीन वनरक्षक कुछ मजदूरों के साथ रात्रि गश्त पर थे. इस मामले में दायर चार्जशीट में कहा गया है कि उनके पास से महज 500 ग्राम मछली जब्त की गई थी, लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि यह आरोपियों से जब्त की गई थी या पास की नदी से जहां तीन जाल पाए गए थे. न ही वन विभाग द्वारा प्रस्तुत गवाहों की सूची में वनरक्षकों के साथ गए श्रमिकों/मजदूरों के नाम हैं.

चार्जशीट के मुताबिक तीन में से दो आरोपी घटनास्थल से फरार हो गए और तीसरे ने कथित तौर पर भागने की कोशिश की, लेकिन असफल रहा. इन तीनों को, आश्चर्यजनक रूप से, अगले दिन तक फिर से गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें हिरासत में लेने के आठ घंटे बाद उनकी चिकित्सा जांच की गई. जिस कारण चिकित्सा जांच का मकसद पूरा नहीं हुआ. गिरफ्तारी के कुछ दिनों बाद जमानत पर रिहा होने के बाद आरोपियों द्वारा जिले की पुलिस और न्यायिक अधिकारियों के समक्ष यह शिकायत दर्ज कराई गई कि उन्हें 5 मई, 2016 की आधी रात को वन अधिकारियों द्वारा उनके घर से उठा लिया गया, अवैध हिरासत में प्रताड़ित किया गया और स्वीकारोक्ति के लिए मजबूर किया गया. शिकायतकर्ताओं ने अपने खून से सने कपड़ों को यातना के सबूत के तौर पर पेश किया.

यह मामला इस तरह के अपराधों में अपराधीकरण की प्रकृति के महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालता है, इन पहलुओं में शामिल हैं: अभियुक्तों से प्रारंभिक जब्ती, मछली की प्रजातियों का उल्लेख न होना, गैर-कानूनी गिरफ्तारी प्रक्रिया, हिरासत में हिंसा और अपराध का साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए गवाहों की अनुपस्थिति. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि मछलियों की कुछ प्रजातियों को छोड़कर, अन्य सभी स्थानीय मछलियों को डब्ल्यूपीए की अनुसूची V के तहत वर्गीकृत किया गया है और इस अनुसूची में वर्गीकृत प्रजातियों का शिकार कोई अपराध नहीं है. मछली के शिकार के आरोपी व्यक्तियों के साथ बातचीत में हमने पाया कि भले ही उन्हें अन्य जानवरों के शिकार के लिए गिरफ्तार अभियुक्तों की तुलना में अपेक्षाकृत जल्दी जमानत मिल गई, लेकिन उनके मामले औसतन 4-5 साल से लंबित हैं.

डब्ल्यूपीए की अनुसूची I के तहत वर्गीकृत मछली की प्रजातियां (व्हेल शार्क, शार्क, रे, सीहॉर्स, जाइंट ग्रूपर) मंडला और बालाघाट के स्थानीय जल स्रोतों में नहीं पाई जाती हैं. अन्य सभी प्रजातियों को कृमी प्रजाति का माना जाता है और इसलिए उनका शिकार अपराध नहीं है. एक संरक्षणवादी ने अपने साक्षात्कार में इस बात पर प्रकाश डाला कि धारा 3(1)(डी) का प्रावधान उन क्षेत्रों को निर्दिष्ट नहीं करता है जिनमें मछली पकड़ने की अनुमति है और यह भी नहीं बताता है कि इसमें पीए शामिल हैं या नहीं. अधिनियम के अन्य प्रावधानों के विपरीत यह कम स्पष्ट है. इसलिए, इस बारे में कोई कानूनी स्पष्टता नहीं है कि मछली पकड़ना अपराध है या नहीं और एफआरए के तहत स्वीकृत अधिकारों की अमान्यता के अभाव में, इन समुदायों की प्रामाणिक आजीविका और भोजन संबंधी आदतों का अपराधीकरण किया जा रहा है.

स. वन उपज का 'प्रामाणिक' उपयोग

गुणात्मक आंकड़ों से उभरने वाला दूसरा रुझान यह है कि वन उपज (जैसे बांस और शहद) एकत्र करने या पीए में और उसके आसपास 'अवैध प्रवेश' करने के लिए नियमित रूप से मामले दर्ज किए जाते हैं. गोंड और विशेष रूप से बैगा समुदाय भोजन और आय के लिए जलावन लकड़ी और अन्य वन उपज प्राप्त करने हेतु ऐतिहासिक रूप से जंगल पर निर्भर रहा है. बैगा समुदाय इन वन क्षेत्रों के भीतर झूम खेती करता था और जंगल पर बहुत अधिक निर्भर है. एफआरए ने जंगल के साथ समुदायों के इस संबंध को मान्यता दी और अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारंपरिक वन निवासियों को उपयोग और प्रबंधन से संबंधित कुछ सामुदायिक और व्यक्तिगत अधिकार प्रदान किए. हालांकि, डब्ल्यूपीए के कार्यान्वयन ने, विशेष रूप से कान्हा टाइगर रिजर्व जैसे पीए में, जंगल तक पहुंच और इसके साथ संबंध को बदल दिया है. कई गाँवों को ऐसे क्षेत्रों में विस्थापित कर दिया गया है जहाँ महुआ जैसे वन उत्पाद तक उनकी पहुँच नहीं है, जो इन समुदायों के जीवन का केंद्र है. साथ ही विस्थापन के अलावा, इन समुदायों के लोगों के खिलाफ इन जरूरतों के लिए जंगल में प्रवेश करने के लिए अपराध भी दर्ज होते हैं.

केस स्टडी #6 अधिकारों का अपराधीकरण - भाग 2

2012 के ऐसे ही एक मामले में, मंडला जिले की C* तहसील के अभियुक्त पर डब्ल्यूपीए की धारा 2(15), 27, 31, 35(6) r/w 50,51 के तहत आरोप लगाया गया था क्योंकि वह कान्हा टाइगर रिजर्व के कोर एरिया में अपने हाथ में कुल्हाड़ी के साथ पकड़ा गया था. परिवाद (चार्जशीट) के मुताबिक आरोपी ने अवैध शिकार के 'इरादे' से क्षेत्र में प्रवेश किया था और उसके द्वारा गार्ड को 'अपराध' स्थल पर ले जाने के बाद उसके पास से सूखी धावड़ा लकड़ी का एक टुकड़ा जब्त किया गया था. परिवाद का यह भी उल्लेख है कि ऐसा करके अभियुक्तों ने देश की 'पारिस्थितिक और पर्यावरणीय सुरक्षा' को इतना नुकसान पहुँचाया है जिसका अंदाजा नहीं लगाया जा सकता है. वन अधिकारी द्वारा तैयार पंचनामा में कई विसंगतियां हैं जो जांच पर गंभीर सवाल खड़े करती है.

उपरोक्त मामला महत्वपूर्ण है क्योंकि यह इस बात पर प्रकाश डालता है कि वन क्षेत्र में प्रवेश मात्र को अवैध माना जाता है और केवल संदेह के आधार पर वन्यजीवों के आवास को नुकसान पहुंचाने के आरोप लगाए जा सकते हैं. एक अन्य मामले में, बालाघाट में एक गोंड के खिलाफ टाइगर रिजर्व के वन क्षेत्र से शहद एकत्र करने का अपराध दर्ज किया गया था. यह मामला पिछले 16 साल से लंबित है और इस व्यक्ति को हर महीने कोर्ट का चक्कर लगाना पड़ता है. हमें दोनों जिलों में ऐसे कई मामले देखने को मिले जहां सदियों से इन जंगलों पर निर्भर रहने वाले इन समुदायों को 'अनाधिकार प्रवेश करने वाला' या 'अवैध प्रवेशकर्ता' करार दिया गया.

इस बिंदु पर डब्ल्यूपीए की धारा 17ए पर चर्चा करना महत्वपूर्ण है. यह धारा अधिनियम के अध्याय IV के प्रावधानों के अधीन, अनुसूचित जनजातियों के लोगों के लिए जंगल तक पहुँच और किसी निर्दिष्ट पौधे या उसके भाग या व्युत्पन्न को अपने प्रमाणिक व्यक्तिगत उपयोग के लिए तोड़ने या चुनने, एकत्र करने या अपने पास रखने के लिए विशेष अधिकार/छूट प्रदान करता है. यह खंड स्पष्ट नहीं करता है किस प्रकार के वन क्षेत्र में इस अधिकार को मान्यता दी गई है. स्पष्टता के अभाव में, अनुसूचित जनजाति और अन्य वन निवासी समुदायों के लोगों के खिलाफ संरक्षित और प्रादेशिक - दोनों वन क्षेत्रों में मामले दर्ज किए जाते हैं.

हमने यह भी पाया कि मंडला और बालाघाट के संरक्षित और प्रादेशिक वन क्षेत्रों में एफआरए के तहत प्रदत्त सामुदायिक वन संसाधन अधिकार ('सीएफआरआर') का प्रावधान शायद ही कभी लागू किया गया. ऐतिहासिक रूप से जंगल पर निर्भर लोगों के अधिकारों को मान्यता प्रदान करने के लिए इस प्रावधान का कार्यान्वयन महत्वपूर्ण है.

जैसा कि इन मामलों और प्रवृत्तियों से स्पष्ट है कि डब्ल्यूपीए जैसे 'संरक्षणवादी' नीतियों और कानूनों ने देशज समुदायों को विरोधाभासी नियम कायदों की ऐसी बंद गली (कैच-22) में फंसा दिया है, जहां उनके पास आत्म-निर्णय और बदलते परिवेश में अपने जीवन में बदलाव करने की छूट नहीं है. समुदाय कानून द्वारा किए जा रहे अपने अपराधीकरण से बच नहीं सकते हैं. उनके जीवन और आजीविका को खतरे में डालने वाले जंगली जानवरों के खिलाफ आत्मरक्षा का पूर्ण अधिकार प्रदान करने में कानून की विफलता, साथ ही जंगल और वन्यजीवों के साथ उनके पारंपरिक संबंधों का अपराधीकरण और उन्हें 'अतिक्रमणकारी' और 'अनाधिकार प्रवेश करने वाला' करार देना विध्वंसक साम्राज्यवाद का सटीक उदहारण है जिसमें मानव आबादी, विशेष रूप से वन- आश्रित समुदायों को संरक्षण के लिए खतरा माना जाता है. स्वतंत्रता के बाद के भारतीय राज्य ने इसी विरासत को जारी रखा है. इस कार्य में राज्य को संरक्षणवादियों और शोधकर्ताओं का सहायता और समर्थन प्राप्त है, जो अभय खाखा के शब्दों में, इन समुदायों के अपराधीकरण में भूमिका निभाने वाले 'भूरे साम्राज्यवादी' हैं. डॉ. खाखा इसे संरक्षण के 'ब्राह्मणवादी पर्यावरणवाद' के रूप में व्याख्यायित करते हैं, जिसमें वनों को 'शुद्ध' और 'मौलिक स्थल' के रूप में देखा जाता है जिन्हें 'प्रदूषित' होने से बचाने की ज़रूरत है. यह दृष्टिकोण न केवल मानव-पशु संघर्ष के रूप में सामने आया है बल्कि इसने संरक्षण की 'वैज्ञानिक' प्रकृति के बारे में भी सवाल उठाए हैं और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इससे इन समुदायों के अधिकारों का अपराधीकरण हुआ है.

छ. गिरफ्तारी

ऊपर वर्णित मामले पीओआर (प्रारंभिक अपराध रिपोर्ट) दर्ज होने के साथ आपराधिक न्याय प्रणाली का हिस्सा बन जाते हैं. इसके साथ ही, जब्ती पत्रक (सीजर मेमो) तैयार किए जाते हैं और जांच आगे बढ़ती है और नियमित प्रक्रिया के रूप में गिरफ्तारी की जाती है.

डब्ल्यूपीए की धारा 50(1) (सी) या 50(3) के तहत वन अधिकारी (रेंज ऑफिसर के स्तर का) को गिरफ्तार करने का अधिकार है. धारा 50(3) के तहत गिरफ्तारी की अनुमति तब मिलती है जब किसी अधिकारी के समक्ष डब्ल्यूपीए के तहत ऐसा कोई कृत्य सामने आता है जिसके लिए लाइसेंस की आवश्यकता होती है और ऐसा लाइसेंस प्रस्तुत नहीं किया जाता है. धारा 50 (1) (सी) किसी अधिकारी को एक व्यक्ति के कब्जे से जानवर, पौधे (या दोनों का कोई हिस्सा) को जब्त करने और ऐसे व्यक्ति को बिना वारंट के गिरफ्तार करने का अधिकार देती है. हालांकि, ये दोनों धाराएं कहती हैं कि यदि आरोपित व्यक्ति का नाम और पता प्रस्तुत किया गया है, और यदि व्यक्ति पर यह विश्वास किया जा सकता है कि वह अपने आरोप के संबंध में समन प्राप्त होने पर उपस्थित होगा, तो गिरफ्तारी आवश्यक नहीं है. हमारे द्वारा अध्ययन किए किए गए मामलों और वन विभाग के अधिकारियों के साथ साक्षात्कार से, यह स्पष्ट था कि गिरफ्तारी ही आम थी. वन्यजीव अपराध जांच नियमावली में गिरफ्तारी के दौरान ध्यान में रखे जाने वाले विभिन्न सुरक्षा उपाय सूचीबद्ध हैं. जैसा कि इस खंड से पता चलता है, ये सिफारिशें केवल कागज पर ही हैं.

अ. गिरफ्तारी - एक नियमित कार्रवाई

मंडला और बालाघाट में जिन 15 मामलों का अध्ययन किया गया, उनमें से चार में आरोपी व्यक्तियों को संदेह के आधार पर (या तो मुखबिर की सुचना या निजी शिकायत के आधार पर) उनके घरों से गिरफ्तार किया गया था. अन्य चार मामलों में शिकार किए गए जानवर का मांस खाने के संदेह में पके हुए मांस का सेवन करते हुए उन्हें गिरफ्तार किया गया था. कुछ अन्य मामलों में, किसी जानवर की दुर्घटना में मौत के कई दिनों बाद उन्हें गिरफ्तार किया गया था.

बालाघाट के तुमड़ीभाट गांव के एक मामले में जंगली सूअर का शिकार किए जाने की जानकारी पर वन विभाग एक आरोपी व्यक्ति के घर पहुंचा ताकि सबूत के तौर पर पका हुआ मांस जब्त कर सके. घर में कुछ मांस, जिसे आरोपी ने खरीदा था, मिलने पर उन्होंने आरोपी को गिरफ्तार कर लिया. इसी तरह, बालाघाट के गढ़ी के एक अन्य मामले में, वन विभाग ने एक व्यक्ति को जंगली मुर्गी का शिकार करने के आरोप में गिरफ्तार किया, जबकि वास्तव में उन्होंने उस व्यक्ति को चिकन फार्म की मुर्गी खाते हुए पाया था.

कई बार वन रक्षकों ने गश्त के दौरान मौके पर ही गिरफ्तारी की. मंडला के सरही के एक आरोपी ने बताया कि उसे पास के एक तालाब से मछली पकड़ने के आरोप में गिरफ्तार किया गया था. उसने कहा कि वह वहां नहाने गया था, लेकिन उसे तब गिरफ्तार कर लिया गया जब मछली पकड़ रहे लोग वन रक्षक को देखते ही भाग खड़े हुए. निम्नलिखित मामला विभाग द्वारा की गई गिरफ्तारी की प्रक्रिया की अनियमितताओं को उजागर करता है.

केस स्टडी *#7* गैर कानूनी गिरफ्तारियां

जंगली सूअर के शिकार के एक मामले में हमने चार्जशीट का अध्ययन किया और पाया कि अभियुक्तों को रात भर हिरासत में रखने के बाद औपचारिक रूप से अगले दिन दोपहर में गिरफ्तार किया गया. अभियुक्तों ने औपचारिक रूप से गिरफ्तार किए जाने से पहले सुबह में इकबालिया बयान पर भी हस्ताक्षर किए. इसके अलावा, इस मामले में उनके गिरफ्तारी मेमो और पंचनामा पर दर्ज गिरफ्तारी का समय आपस में मेल नहीं खाता था. उनकी चिकित्सा जांच में 'दोनों नितंबों पर सूजन' और अन्य चोटें पाई गईं.

इस मामले में पुलिस ने दो आरोपियों को कथित रूप से उनके द्वारा शिकार किए गए जंगली सूअर का मांस खाते हुए पकड़ा था. पुलिस ने मुखबिरों से मिली सूचना पर कार्रवाई की थी. चार्जशीट में उन्हें पकड़े जाने के बारे में दो अलग-अलग विवरण का उल्लेख है: एक, उन्हें मांस खाते हुए पकड़ा गया था और दूसरा, वे कान्हा टाइगर रिजर्व के बफर जोन में जंगली सूअर का शिकार करते हुए पकड़े गए. पीओआर के अनुसार, जब्ती की रिपोर्ट में दर्ज जब्ती की तारीख के एक दिन बाद अपराध को अंजाम दिया गया. जब्त किए गए सामानों में शिकार के उपकरण के साथ-साथ कथित रूप से शिकार किए गए जंगली सूअर का मांस भी शामिल था. जिस खेत पर आरोपी कथित तौर पर मांस पका रहे थे, वह किसी तीसरे व्यक्ति की है, जो न तो आरोपी और न ही गवाह है. इस मामले में अभियोजन पक्ष का पूरा विवरण गिरफ्तारी संबंधी कमियों और विरोधाभासों से भरा हुआ है.

ब. गिरफ्तारी प्रक्रियाओं पर सुरक्षा

डब्ल्यूपीए वन्यजीव अपराधों के लिए छह महीने से सात साल तक की सजा का प्रावधान करता है. केवल दूसरी बार सजा होने पर सात साल से अधिक की सजा का प्रावधान है.

जैसा कि, शिकार के अन्य संगीन मामलों सहित अन्य सभी अपराध अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य में सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशों के दायरे में आते हैं और इसलिए ऐसे मामलों में गिरफ्तारी अनिवार्य नहीं है. अर्नेश कुमार के फैसले में कहा गया है कि इस बात से संतुष्ट होने के बाद गिरफ्तारी की जानी चाहिए कि गिरफ्तारी के बिना जांच संभव नहीं होगी. इस फैसले ने गिरफ्तार किए जाने के वक़्त, गिरफ्तारी से पहले के पूछ-ताछ के तरीके और गिरफ्तारी के बाद रिमांड मंजूर करने वाले मजिस्ट्रेट की आवश्यक संतुष्टि के संबंध में कई सुरक्षा उपाय निर्धारित किए. जांच नियमावली में यह भी कहा गया है कि शाम 6 बजे के बाद आरोपी व्यक्तियों से पूछताछ से बचना चाहिए, परिवार या स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में गिरफ्तारी की जानी चाहिए और डीके बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य मामले में दिए गए अन्य दिशानिर्देशों का पालन किया जाना चाहिए.

वन विभाग द्वारा गिरफ्तारी की नियमित प्रक्रिया में निष्पक्ष जांच संबंधी अधिकारों का व्यापक उल्लंघन करने की प्रवृत्ति जारी है. हमारे पास मौजूद चार्जशीट से यह स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1972 (सीआरपीसी) की धारा 41(1) से संबंधित गिरफ्तारी चेकलिस्ट बिना सोच-विचार के भरा जाने वाला दस्तावेज भर बन कर रह गया है. गिरफ्तारी का कारण बस यह बताया जाता है कि 'अपराधी गंभीर किस्म का है' या उन सभी कारणों के सामने यांत्रिक तरीके से सही का निशान लगा दिया जाता है जिनके आधार पर धारा 41(1) के तहत गिरफ्तारी जरूरी हो सकती है.

स. हिरासत में हिंसा को नज़रअंदाज़ करना

वन विभाग द्वारा आधिकारिक रूप से पकड़े जाने पर इन संदिग्धों को गिरफ्तार कर मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया. बाद में, उन्हें रिमांड की शेष अवधि के लिए पुलिस की हिरासत में भेज दिया गया. हालांकि, इन व्यक्तियों को मजिस्ट्रेट के सामने पेश किए जाने से पहले कई दिनों तक हिरासत में रखा गया था. इस दौरान उन्हें हिरासत में हिंसा का शिकार होना पड़ा. हमने जिन 16 अभियुक्तों से बात की, उनमें से 11 ने कहा कि वन विभाग द्वारा उनके साथ शारीरिक हिंसा की गई थी. आरोपी व्यक्तियों के अनुसार, इस हिंसा के कारण उन्होंने अपराध के इकबालनामे पर हस्ताक्षर किए और अपने सहयोगियों के नाम बताए.

ऐसा नहीं है कि अर्नेश कुमार के दिशा-निर्देशों का उल्लंघन और हिरासत में हिंसा सिर्फ वन विभाग द्वारा की जाती है. लोक अभियोजकों, वकीलों और पुलिस/वन विभाग के अधिकारियों की बातों से प्रमुखता से यह सामने आया कि रेंज ऑफिसर्स और बीट गार्ड्स को पुलिस विभाग के समान जांच के लिए प्रशिक्षित नहीं किया जाता है और इसलिए उनके अक्षम साबित होने का खतरा रहता है. इससे संबद्ध सबूतों, बयानों के संग्रह में प्रक्रियात्मक खामियां रह जाती हैं या वनों के अन्य प्रशासनिक प्रबंधन के साथ-साथ पुलिस कार्यप्रणाली संबंधी अन्य जिम्मेदारियों के निर्वहन संबंधी अक्षमता सामने आती है (अगले खंड में जिसकी विस्तार से पड़ताल की गई है). हालांकि, वन विभाग के कामकाज में अस्पष्टता और इसके अधिकारियों को प्राप्त प्रतिरक्षा ने मौजूदा सुरक्षात्मक उपायों से संबंधित पुलिस विभाग की किसी भी प्रकार की जवाबदेही तय करने से रोका है. मंडला में अवैध मछली पकड़ने के एक मामले में यह देखने को मिला. इस मामले में क्षेत्र के बीट गार्ड व रेंज अधिकारी ने चार आरोपितों को बीट कैंप में दो-तीन दिनों तक हिरासत में रखा था और हिरासत में लिए गए सभी लोगों के शरीर पर चोट के निशान थे. चिकित्सा जांच रिपोर्ट में इन

चोटों का विवरण दर्ज किया गया, लेकिन स्वयं वन विभाग (उनके पास आईएफए के तहत दुर्व्यवहार संबंधी आंतरिक प्रक्रियाएं हैं) या अदालत द्वारा अभियुक्तों के के वकील के आग्रह पर भी कोई कार्रवाई नहीं की गई.

ज. जमानत और आरोपी व्यक्तियों द्वारा वहन किया गया खर्च

डब्ल्यूपीए के कार्यान्वयन से जुड़ा एक महत्वपूर्ण पहलू जमानत है. अधिनियम की धारा 51 अधिनियम की विभिन्न अनुसूचियों के तहत जानवरों के शिकार, अधिनियम के तहत किसी भी नियम या आदेश के उल्लंघन या इस अधिनियम के तहत दी गई अनुमति या किसी भी लाइसेंस की शर्तों के उल्लंघन जैसे अपराधों के लिए दंड (कारावास और जुर्माना की शर्तें) निर्धारित करती है.

लेकिन डब्ल्यूपीए के तहत जमानती और गैर-जमानती अपराधों की परिभाषा नहीं दी गई है; इसके बजाय जांच के कई स्तर निर्धारित करते हैं कि कोई विशेष अपराध जमानती है या नहीं. पंजोश पारधी बनाम मध्य प्रदेश राज्य मामले में, एमपी उच्च न्यायालय ने कहा कि अधिनियम के तहत, यदि किसी अपराध के लिए निर्धारित सजा तीन साल से अधिक नहीं है, तो उसे जमानती माना जायेगा. इसके अलावा, सीआरपीसी की अनुसूची I के भाग II में दर्ज वर्गीकरण के अनुसार, तीन से सात साल की कैद की सजा के प्रावधान वाला अपराध गैर-जमानती है. इसके अलावा, अर्जुन सिंह बनाम छत्तीसगढ़ राज्य मामले में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय ने कहा कि डब्ल्यूपीए के तहत अपराधों के लिए जमानती और गैर-जमानती अपराधों की परिभाषा को सार्वभौमिक रूप से उन मामलों में लागू नहीं किया जा सकता है जब शिकार अभयारण्य या नेशनल पार्क में किया जाता है.

अ. जमानत प्राप्त करने संबंधी कार्यप्रणाली

हमने अपने क्षेत्र भ्रमण में पाया कि डब्ल्यूपीए के तहत ज्यादातर गिरफ्तारियां जंगली सूअर, चीतल, सांभर जैसे जानवरों और अधिनियम की अनुसूची III और IV के तहत वर्गीकृत जानवरों के शिकार के लिए की जाती हैं. इन अनुसूचियों के जानवरों के शिकार का अपराध डब्ल्यूपीए की धारा 51 के तहत जमानती है और इसके लिए तीन साल से कम की सजा का प्रावधान है. अधिनियम के तहत वन विभाग और पुलिस दोनों को गिरफ्तारी का अधिकार है, लेकिन ज्यादातर गिरफ्तारियां वन विभाग द्वारा की जाती हैं क्योंकि 'अपराध' जंगल में घटित होते हैं. जैसा कि ऊपर के खंड में बताया गया है, वन विभाग द्वारा की गई गिरफ्तारियों के दौरान भारत के शीर्ष न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए दिशानिर्देशों के अनुसार अभियुक्तों और विचाराधीन कैदियों के अधिकारों को सुनिश्चित नहीं किया जाता है. उदाहरण के लिए, जैसा कि ऊपर उल्लिखित अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि कम-गंभीर अपराधों के लिए गिरफ्तारी अनिवार्य नहीं है और ऐसा सीआरपीसी की धारा 41 के तहत अपेक्षित होने पर किया जाना चाहिए. हालांकि, डब्ल्यूपीए के तहत अपराधों के सुनवाई की प्रक्रिया में अभियुक्तों के ऐसे अधिकारों को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है, लेकिन यह नियमित सुनवाई से अलग है.

केस स्टडी #8 डब्ल्यूपीए के तहत जमानत प्राप्त करना

हम गोंड समुदाय के दो लोगों से जी* गांव में मिले, जो कान्हा के कोर एरिया से 2 किमी दूर है. उन पर तीन अन्य लोगों के साथ जंगल में सांभर का शिकार करने का आरोप लगाया गया. घटना करीब तीन साल पुरानी है और मुकदमा अभी भी लंबित है. आरोपियों में से एक ने हमें बताया कि उन्हें

मंडला जेल में लगभग तीन महीने काटने पड़े और जमानत के लिए प्रत्येक को लगभग 12 से 15 हजार रुपये खर्च करने पड़े. और इससे पहले, उन्हें दो दिन तक नाकेदार (बीट गार्ड) के कार्यालय में रखा गया और इसके बाद मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया.

ये मामला यह समझने के लिए महत्वपूर्ण है कि डब्ल्यूपीए के तहत गिरफ्तारी और जमानत के लिए निर्धारित कानूनी प्रक्रिया की कैसे अक्सर अनदेखी की जाती है. इस मामले में कथित तौर पर शिकार किए गए जानवर को अनुसूची III की प्रविष्टि संख्या 16 के तहत वर्गीकृत किया गया है और दोषसिद्धि पर अधिकतम निर्धारित सजा तीन साल है. इसलिए, इस मामले में, कानून और ऊपर वर्णित सुप्रीम कोर्ट एवं उच्च न्यायालय के निर्णयों के अनुसार, गिरफ्तारी अनिवार्य नहीं है और आरोपी को जमानत प्राप्त करने का अधिकार है. हालाँकि, इस मामले के तथ्य बताते हैं कि अभियुक्तों के अधिकारों का उल्लंघन किया गया. अनुसूची III और IV से संबंधित जानवरों के शिकार के अन्य मामलों में भी, हमारे आंकड़े बताते हैं कि निर्धारित कानून का पालन नहीं किया जाता है.

अभियुक्तों और वकीलों के साक्षात्कार से हमने निचली और उच्च न्यायालयों से जमानत प्राप्त करने के प्रचलित तौर-तरीकों के बारे में जाना. इसका कानून के प्रावधानों और मामले की गंभीरता से बहुत कम संबंध है. यदि आरोपी व्यक्ति ने पहली बार अपराध किया है तो उसे कथित रूप से शिकार किए गए जानवर के आधार पर निचली अदालत से जमानत मिलने की संभावना रहती है. यदि कोई पहले भी आरोपित हो चुका है, भले ही उसे दोषी नहीं ठहराया गया हो, तो उस व्यक्ति को अनिवार्य रूप से उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाना पड़ता है. मामलों के विश्लेषण से हमने पाया कि उच्च न्यायालय से जमानत मिलने से पहले व्यक्ति को कम-से-कम 2-3 महीने जेल में बिताने पड़ते हैं और न्यूनतम 20 से 50 हजार रुपये की ज़मानत देनी पड़ती है. बाघ शिकार के एक मामले में कैद की यह अवधि एक साल से अधिक की थी. जेल में रहने के साथ-साथ अभियुक्तों को जमानत राशि और वकीलों की फीस का इंतजाम करने के लिए भारी कर्ज का बोझ उठाना पड़ता है. जिन लोगों से हमने बात की उनमें से लगभग हर व्यक्ति ने वकीलों की फीस और ज़मानत की रकम चुकाने के लिए कुछ क़र्ज़ लिया, मवेशी बेचे या गहने गिरवी रखे.

ब. लंबित मामले और मानसिक परेशानी

हमारे द्वारा विश्लेषण किए गए आंकड़ों से, यह अच्छी तरह से स्थापित होता है कि डब्ल्यूपीए के तहत लंबित मामले एक गंभीर समस्या है. अभियुक्तों और वकीलों के साथ साक्षात्कारों से हमने जाना कि किसी मुकदमे के निपटारे में लगभग पाँच वर्ष लगते हैं. जमानत प्राप्त करने में औसतन 12000-15000 रुपये खर्च होते हैं. और जमानत मिलने के बाद भी आर्थिक परेशानी ख़त्म नहीं होती. प्रत्येक अभियुक्त को प्रत्येक एक से तीन महीने में अदालत में पेशी के लिए जाना पड़ता है और प्रत्येक पेशी पर 200-300 रुपये का खर्च आता है, जिसमें अदालत के कर्मचारियों को रिश्वत, वकील की फीस और अदालत आने-जाने का किराया शामिल है. साथ ही, अपने गाँव से अदालत आने वाले व्यक्ति का पूरा दिन अदालत में बीतता है और इससे उनकी आजीविका का नुकसान होता है क्योंकि दिहाड़ी मजदूरों या भूमिहीन किसानों को उस दिन की कमाई से हाथ धोना पड़ता है. कई मामलों में हमने पाया कि वकीलों ने मुवक्किलों को गुमराह किया, जिससे उन्हें मानसिक परेशानी हुई. साक्षात्कार किए गए लोगों ने अपने वकीलों के बारे में शिकायत की कि वे जानबूझकर छूट के लिए आवेदन दाखिल नहीं कर रहे हैं और मुवक्किल द्वारा समय पर फीस का

भुगतान करने में असमर्थता के कारण मुकदमे की सुनवाई में देरी कर रहे हैं. इस वजह से, कई मुवक्किल, विशेष रूप से अनुसूचित जनजाति समुदायों के मुवक्किल, अपने समुदाय के वकीलों पर ही भरोसा करते हैं.

III. कानून की जमीनी हकीकत - शक्ति, प्रशासन और किरदार

यह खंड इस बात की पड़ताल करता है कि कैसे वन विभाग और अन्य किरदार शक्ति का प्रयोग करते हैं और प्रशासन एवं कानून के कार्यान्वयन को आकार देते हैं.

क. डब्ल्यूपीए के तहत मुखबिर

आपराधिक खुफिया जानकारी के स्रोत के रूप में मुखबिरों का इस्तेमाल खुद पुलिस कार्यप्रणाली जितनी पुरानी व्यवस्था है. हाल के वर्षों में ये ज्यादा महत्वपूर्ण हो गए हैं क्योंकि अपराध के प्रति मानक प्रतिक्रियात्मक कार्रवाइयों के अलावा प्रभावी पुलिसिंग रणनीतियों को विकसित करने में रुचि बढ़ी है. पुलिस अपराधों और असामाजिक व्यवहार के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए आम जनता पर बहुत अधिक निर्भर करती है, हालांकि किसी अपराध के पीड़ित या पुलिस को जानकारी या गवाही देने वाले जनता के प्रति जिम्मेदार किसी अन्य नागरिक को पुलिस मुखबिर नहीं माना जाता है. यह आम तौर पर किसी ऐसे व्यक्ति को परिभाषित करता है जिसकी या तो आपराधिक नेटवर्क, जो पुलिस की पकड़ से काफी हद तक बाहर है, तक पहुंच है या उसके करीब है; जो आम तौर पर वास्तविक या कथित लाभ के बदले में जानकारी उपलब्ध कराता है और जिसके सहयोग की पहचान पुलिस आवश्यक रूप से गुप्त रखती है.

औपनिवेशिक शासन के दौरान मुखबिरों का व्यापक इस्तेमाल किया जाता था और इसने प्रशासकों को देश भर में सीटीए को अधिक कुशलता से लागू करने में मदद की. ब्रिटिश अधिकारियों ने बहुत से लोगों, ज्यादातर पुरुष जिन्हें समुदाय के नेताओं के रूप में स्वीकार किया जाता था, को अपने जनजातियों के विरुद्ध मुखबिरी करने के लिए कहा. ये मुखबिर या 'सामुदायिक नेता' ब्रिटिश जिला अधिकारियों द्वारा प्राप्त सम्मान से अपनी हैसियत मज़बूत कर सकते थे या आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते थे. इन 'सामुदायिक नेताओं' ने मध्यस्थ के रूप में कार्य किया और अपने साथी 'आदिवासियों' को राजी किया. ब्रिटिश अधिकारियों के अनुसार, 'आपराधिक जनजाति' समाजों के कद्दावर पुरुषों के साथ संबंध, इन समूहों के साथ 'घनिष्ठ संबंध बनाने और उनकी सहानुभूति हासिल करने' के लिए भी महत्वपूर्ण थे. हालांकि अंग्रेजों ने इन्हें पितृसत्तात्मक संबंधों के रूप में देखा, 'सामुदायिक नेताओं' ने इसका फायदा उठाने का प्रयास किया. एक 'सामुदायिक नेता' की मान्यता मिल जाने के कारण कई लोग ग्राम प्रधान बन गए, सीटीए के तहत कार्रवाई से बच गए और कुछ मामलों में उन्होंने सरकारी सुरक्षा भी प्राप्त की. 'सामुदायिक नेताओं' के अलावा, अन्य पंजीकृत पुरुषों ने पुलिस मुखबिर बनकर या पुलिस बल में रोजगार पाकर सीटीए संचालित शासन का लाभ उठाने का प्रयास किया. कुछ महिलाओं को मुखबिरों के रूप में पुलिस कार्यप्रणाली तंत्र में भी शामिल किया गया. मुखबिरों पर भरोसा करने का यह तरीका आज भी जारी है और मुखबिर भी पहले की तरह ही इसका लाभ उठाते हैं.

अब, भले ही मुखबिरों (जैसा कि उन्हें स्थानीय रूप से कहा जाता है) के संबंध में डब्ल्यूपीए के तहत कोई निर्दिष्ट प्रावधान नहीं है, लेकिन वे वन्यजीव प्रशासन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं. वे वन्यजीव अपराधों या अवैध गतिविधियों के संबंध में पुलिस या वन अधिकारियों को महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते

हैं, साथ ही यह जानकारी भी देते हैं कि कौन उन्हें अंजाम दे सकता है. वन्यजीव अपराधों के मामलों में हमने पाया है कि ज्यादातर मामलों में फारेस्ट गाड्र्स और अधिकारियों को मुखबिरों से जानकारी मिलती है. विश्लेषण किए गए कुल प्राथमिकियों में से, पुलिस को 86% मामलों में किसी मुखबिर से जानकारी मिली. हमारे द्वारा किए गए 15 साक्षात्कारों में से, पांच मामलों में वन विभाग ने गश्त के दौरान आरोपी व्यक्तियों को पकड़ा, जबकि अन्य पांच मामलों में मुखबिर ने अपराध की जानकारी दी. बाकी साक्षात्कारों में आरोपी व्यक्तियों के बारे में ऐसी कोई जानकारी नहीं मिली.

हमने साक्षात्कारों और अपने अवलोकनों से जाना कि कई कारणों से लोग विभाग के मुखबिर बनते हैं. पहला, इनाम पाने के लिए क्योंकि वन विभाग बाघ के शिकार की सूचना देने वाले को 50 हजार रुपए तक का इनाम देता है. दूसरा, राज्य या वन प्रशासन के साथ इस तरह के संबंध रखने से मिलने वाली प्रतीकात्मक शक्ति के कारण भी मुखबिर गांव की हर छोटी-छोटी गतिविधि की जानकारी देते हैं. तीसरा कारण अंतर-सामुदायिक या व्यक्तिगत संघर्ष, लड़ाई या दुश्मनी में निहित है. क्षेत्र भ्रमण के दौरान, हमें एक उदाहरण मिला जहां गोंड समुदाय के सदस्य बैगा समुदाय के सदस्यों के खिलाफ मुखबिरी करते थे क्योंकि उस गांव में वे आपस में विरोधी थे.

कई मामलों में मुखबिर उसी गांव के होते हैं जहां से आरोपी गिरफ्तार किए जाते हैं या संदिग्ध रहते हैं. कुछ मामलों में, आरोपी व्यक्तियों और ग्रामीणों को मुखबिर के बारे में पता होता है यदि वे उनके गांव के होते हैं. यहां तक कि ग्राम वन समिति (पर्यावरण-विकास समिति), जिनका निर्माण जेएफएम नीति के तहत होता है और जो वन विभाग द्वारा नियंत्रित हैं, के सदस्य भी कुछ मामलों में मुखबिर के रूप में कार्य करते हैं.

एफआईआर के विश्लेषण और साक्षात्कार से यह स्पष्ट है कि वन विभाग डब्ल्यूपीए के तहत अपराध दर्ज करने के लिए मुखबिरों पर बहुत अधिक निर्भर करता है. जैसा कि एक फ़ॉरेस्ट गार्ड ने साक्षात्कार में बतायाथा, अधिकारी मुखबिर को सुरक्षा और संरक्षण प्रदान करते हैं और विभाग के लिए मुखबिरी करने वाले व्यक्ति का नाम नहीं बताते हैं. वे उन्हें पैसे, यात्रा के लिए खर्च और ईंधन देते हैं.

ख. डब्ल्यूपीए के तहत आदतन अपराधी और निगरानी

अपराध की 'आदत' या यहां तक कि अपराध की 'लत' की अवधारणा, जिसका उपयोग 1900 के दशक में भारत में आपराधिक जनजातियों की पहचान करने के लिए किया गया था, अपराध को जन्मगत (इसलिए जाति आधारित) प्रवृति मानती है, जिसके लिए संस्थागत पुनर्वास निर्धारित है. यह अपराध की पारंपरिक समाजशास्त्रीय अवधारणाओं का खंडन करता है, जो मोटे तौर पर अपराध को समाज के सामूहिक विवेक को नुकसान पहुंचाने वाले सामाजिक कृत्य के रूप में परिभाषित करता है. आदतन अपराध करने की इस प्रचलित धारणा के कारण, 18वीं शताब्दी में औपनिवेशिक सरकारों ने 'निरोधक पुलिस' की स्थापना की, जिसकी शुरुआत गैर-प्रामाणिक व्यवसायों में लगे या स्थापित कृषि जीवन शैली के बाहर रहने वाले लोगों के पंजीकरण और उनकी निगरानी से हुई. 1871 में सीटीए के पारित होने के साथ, इस वर्गीकरण के तहत 'वंशानुगत अपराधी' माने जाने वाले व्यक्तियों के पूरे समूहों को शामिल कर लिया गया. निरोधक पुलिस कार्यप्रणाली के उपाय सफेदपोश अपराध के विपरीत मुख्य रूप से छोटे अपराधों या शारीरिक क्षति या संपत्ति को नुकसान पहुंचाने वाले अपराधों से संबंधित हैं; इसलिए, यह तय है कि इन अपराधों के डेटाबेस में

दर्ज लोगों के उच्च सामाजिक या आर्थिक पूंजी वाले समुदायों से संबंधित होने की संभावना कम हैं. इसके अलावा, पुलिस विशेष रूप से ऐसे लोगों की निगरानी करती है जिनके निवास स्थान की उसे जानकारी होती है और इस मामले में ऐसे लोग हाशिए के समुदायों से संबंधित होते हैं. दुर्भाग्य से, जाति को अपराध से जोड़ने का चलन न केवल भारतीय पुलिस व्यवस्था में, बल्कि इस देश के वन्यजीव प्रशासन के व्यापक घटक के रूप में अभी भी प्रचलित है.

एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट के अनुमति से सीआरपीसी पुलिस को ऐसे 'निर्मम और आदतन अपराधियों' के खिलाफ निरोधात्मक कार्रवाई के लिए अधिकृत करती है, जो अपने इतिहास के आधार पर विशिष्ट अपराधों की अंजाम दे सकते हैं. पुलिस इसके लिए उनसे अच्छे व्यवहार संबंधी शपथ पत्र पर हस्ताक्षर करवाती है. हालांकि 'आदतन' और 'आदत' शब्दों को सीआरपीसी में परिभाषित नहीं किया गया है, जिससे इसके वैकल्पिक व्याख्याओं की गुंजाईश रहती है.

धारा 110 अपराधियों के कई समूहों से संबंधित है, जो विशिष्ट प्रकार के अपराध, जैसे चोरी, अपहरण, जबरन वसूली में शामिल रहते हैं. हालाँकि यह धारा विभिन्न प्रकार के अपराधों से संबंधित है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि किसी को आदतन अपराधी मानने के लिए क्या उसका पूर्व में सजायाफ्ता जरूरी है या महज आरोप ही पर्याप्त हैं. इस धारा की अस्पष्टता तब और बढ़ जाती है जब यह शर्त जोड़ी जाती है की कोई व्यक्ति उतना ही उन्मत और खतरनाक होता है जितना कि वह प्रसंगाधीन समुदाय की सुरक्षा कारकों के बगैर उन्मुक्त छोड़ देने पर होता है. इस धारा में ये व्यापक समावेशन अधिकारियों द्वारा इस प्रावधान के तहत अधिकारों के चयनात्मक इस्तेमाल की अनुमति देते हैं. इसके अलावा, 'अच्छा व्यवहार' सुनिश्चित करने के लिए सुरक्षा उपाय भी किए जा सकते हैं और मध्य प्रदेश पुलिस विनियमन के नियम 565 के तहत, आदतन अपराधियों को कुछ अपराधों के लिए दोषी पाए जाने पर पांच साल तक की अवधि के लिए पुलिस निगरानी में रखने का आदेश दिया जा सकता है.

वन्यजीव अपराधों, जैसे कि शिकार, जंगल जानवरों के आवासों को नष्ट करना या आरक्षित क्षेत्र में प्रवेश करना, के लिए दोषी करार दिए गए लोगों के रिकॉर्ड संबंधित पुलिस स्टेशन और अधिकार क्षेत्र वाले वन विभाग - दोनों अपने पास रखते हैं. इन रिकाड्र्स के आधार पर पूर्ववर्ती सत्यापन (एंटीसेडेंट वेरिफिकेशन) किया जाता है. वन्यजीव अपराध नियंत्रण ब्यूरो (डब्ल्यूसीसीबी) सजायाफ्ता व्यक्ति या आदतन अपराधियों का नाम और विवरण एकत्र करता है.

केस स्टडी #9 डब्ल्यूपीए के तहत आदतन अपराधी

बालाघाट में दर्ज एक मामले में, दो तेंदुए पीए के बाहर एक राजस्व गांव में मृत पाए गए थे, वन अधिकारियों द्वारा दायर चार्जशीट के अनुसार इनकी मौत कथित तौर पर करंट लगने से हुई थी. वन अधिकारियों को मुखबिर से संदिग्धों के बारे में जानकारी मिली और इसके बाद डॉग स्क्वायड की मदद से उनकी पहचान की गई. गोंड समुदाय से ताल्लुक रखने वाले सभी पांच संदिग्धों पर डब्ल्यूपीए की धारा 2(1), (16), (20), 9, 39, 44, 50 और 51 के तहत मामला दर्ज किया गया. एक आरोपी ने हमें बातचीत में बताया कि कि उसे केवल संदेह के आधार पर गिरफ्तार किया गया क्योंकि उसके खिलाफ जंगली सूअर के शिकार का एक और मामला लंबित है. उसने यह भी बताया कि जमानत मिलने से पहले उसे सात महीने जेल में बिताने पड़े. आरोपी व्यक्ति के वकील ने हमें बताया कि आपराधिक

पृष्ठभूमि और अनुसूची I के जानवर के शिकार का मामला होने के कारण उन्हें इस मामले में निचली अदालतों से ज़मानत नहीं मिली. आरोपी की उम्र लगभग 50 वर्ष है और उसने हमें बताया कि उसे प्रताड़ित किया गया और अपराध कबूल करने के लिए मजबूर किया गया.

यह मामला 'आदतन अपराधियों' के संबंध में दो महत्वपूर्ण समस्याओं को उजागर करता है.पहला, किसी व्यक्ति के खिलाफ मुकदमा लंबित होने से, केवल संदेह के आधार पर उसे भविष्य के अपराधों के लिए आरोपी बनाए जाने की संभावना बढ़ जाती है. इसके अलावा, अधिनियम और नियमों में आदतन अपराधी की परिभाषा के बारे में कोई स्पष्टता नहीं है. यह वन अधिकारी को व्यापक और मनमाना अधिकार प्रदान करता है, जिसका उपयोग निरपवाद रूप से उत्पीड़ित जाति समुदायों के खिलाफ किया जाता है. दूसरा, एक ऐसे व्यक्ति को जमानत मिलना मुश्किल हो जाता है जिसे मनमाने ढंग से आदतन अपराधी करार दिया गया हो.

किसी व्यक्ति को दोषी ठहराए जाने पर अभियुक्तों की एक हिस्ट्रीशीट तैयार की जाती है और रेंज और डिवीजन स्तर पर इसका रिकॉर्ड रखा जाता है. किसी हिस्ट्रीशीटर (पूर्व अपराधी) के जेल से छूटने पर संबंधित रेंज ऑफिसर द्वारा उसकी गतिविधियों पर नियमित नजर रखी जाती है. दोषसिद्धि की सूचना संबंधित पुलिस स्टेशन को भी दी जाती है और निगरानी के लिए उन्हें हिस्ट्री शीट की एक प्रति प्रदान की जाती है. जमानत पर छूटे या सजा पूरी करने के बाद जेल से छूटे अभियुक्त की गतिविधियों पर भी नियमित नजर रखी जाती है. यदि वे लंबे समय तक दिए गए पते पर नहीं मिलते हैं, तो संबंधित पुलिस और वन विभाग के अधिकारियों को निरोधात्मक कदम उठाने के लिए सतर्क किया जाता है. एक हिस्ट्रीशीटर के किसी नए स्थान पर अस्थायी अवधि की गतिविधि सहित सभी आवाजाही, विशेष रूप से वन्यजीव निवास स्थान के आस-पास की आवाजाही, के बारे में क्षेत्राधिकार वाले जिला/मंडल वन अधिकारी (डीएफओ)/रेंज फॉरेस्ट ऑफिसर(आरएफओ)/स्टेशन हाउस ऑफिसर(एसएचओ) को उसकी गतिविधियों पर नजर रखने के लिए सूचित किया जाता है. दोषियों और आदतन अपराधियों का फोटो डेटाबेस मंडल और राज्य स्तर पर तैयार किया जाता हैऔर इसके व्यापक प्रसार के लिए इसे डब्ल्यूसीसीबी और एनटीसीए के साथ साझा किया जाता है.

हमारे साक्षात्कारों में, वन अधिकारियों ने कहा कि जिन मामलों में एक आदतन अपराधी आरोपी होता है, वैसे अपराधों में समझौता संभव नहीं है. उन्होंने यह भी कहा कि वे आरोपी व्यक्तियों की गिरफ्तारी का विवरण एक रजिस्टर में दर्ज करते हैंऔर पंजीकृत आदतन अपराधियों पर नज़र रखने के लिए इसे हर तीन या चार महीने में अपडेट करते हैं. वन क्षेत्र की प्रकृति के आधार पर उसकी निगरानी का स्तर अलग-अलग होता है. इन अपराधियों के नामों को रजिस्टर से केवल तभी हटाया जा सकता है जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, या जब उन्हें पता चलता है कि व्यक्ति स्थायी रूप से विशेष क्षेत्र से दूर चला गया है.

ग. अपराध समाशोधन का अभाव

समाशोधनीय अपराध (ऐसे अपराध जिनमें समझौता हो सकता है) सीआरपीसी, 1973 की धारा 320 के अंतर्गत आते हैं. ये ऐसे अपराध हैं जिनमें पीड़ित पक्ष (शिकायतकर्ता) अभियुक्त के खिलाफ किए गए दावों को खारिज करने का फैसला करता है. डब्ल्यूपीए की धारा 54 उप वन संरक्षक या उच्चतर रैंक के

अधिकारी द्वारा अधिकतम 25,000 रुपये के भुगतान के माध्यम से अपराधों का समाशोधन (समझौते द्वारा निपटारे) का प्रावधान करती है.

अधिनियम के मुताबिक कोई भी अपराध जिसके लिए डब्ल्यूपीए की धारा 51 के तहत कारावास की न्यूनतम अवधि तीन वर्ष से अधिक है, उनमें समझौता नहीं किया जा सकता है. इसलिए, अनुसूची I और अनुसूची II के भाग II में सूचीबद्ध जंगली जानवरों से जुड़े अपराध और टाइगर रिज़र्व के कोर एरिया में शिकार के मामलों में समझौता मुमकिन नहीं है. इसके अलावा, अधिनियम की धारा 60ए में प्रावधान है कि अपराध के मामले में समझौता कराने वाला अधिकारी उस व्यक्ति को इनाम, प्रोत्साहन के रूप में, देने का आदेश दे सकता है, जो अपराध का पता लगाने या अपराधियों की गिरफ्तारी में सहायता प्रदान करता है.

पीओआर दाखिल करने के बाद समझौते का सवाल प्रासंगिक हो जाता है. जांच के बाद, जांच अधिकारी समझौते (जहां भी लागू हो) की सिफारिश करता है. एसडीओ (कानून के तहत सहायक वन संरक्षक के पद के स्तर का) तय करते हैं कि मामले का समझौते द्वारा निपटारा किया जाना चाहिए या नहीं. अगर वे स्वीकार करते हैं और कंपाउंडिंग नंबर भेजते हैं तो मामले में समझौता हो जाता है. यदि रेंजर एसडीओ के निर्णय से असहमत हैं तो वे सीसीएफ/क्षेत्र निदेशक के समक्ष फैसले के खिलाफ अपील भी कर सकते हैं. समझौता डब्ल्यूपीए के तहत केवल एक विभागीय कार्यवाही है, यह सीआरपीसी की धारा 320 के तहत बरी होने के समान नहीं है.

घ. अपराधों का समाशोधन

वन्यजीव अपराध जांच नियमावली कहती है कि प्रत्येक मामले का मूल्यांकन किया जाना चाहिए और समझौते संबंधी आदेश में साक्ष्य पर चर्चा की जानी चाहिए. ऐसे मामलों में जहां आरोपी शिकार, अवैध व्यापार में शामिल है और आदतन अपराधी है, समझौता नहीं किया जाना चाहिए. इस प्रकार, जैसा कि एक वन अधिकारी ने साक्षात्कार में बताया था 'व्यक्ति की स्थिति, गलती पर खेद' (यदि यह गलती से किया गया है) - ये कारक जुर्माने की राशि निर्धारित करते हैं. हम यह भी देखते हैं कि क्या वह व्यक्ति आदतन अपराधी है. हम वन अपराध प्रबंधन प्रणाली (एफओएमएस) पर उनके पिछले पांच वर्षों के रिकाड्र्स की जांच करते हैं.

अपराधों में समझौते की संभावना, जो अपराध निचली अनुसूची (III-V) के तहत वर्गीकृत और कम संरक्षण प्राप्त जानवरों से संबंधित होते हैं, के बावजूद अपराधों का समझौते द्वारा निपटारा नहीं किया जाता है. हमारा फील्डवर्क इस मात्रात्मक आंकड़े की भी पुष्टि करता है कि वन विभाग के अधिकारी एसटी समुदायों में अपराधीकरण का खौफ़ बनाए रखने के लिए छोटे जुर्माने के साथ मामले के निपटारे के इच्छुक नहीं होते हैं.

इतने विस्तृत कानूनी प्रावधानों के बावजूद, समझौते संबंधी प्रावधानों को शायद ही कभी लागू किया जाता है. एक अधिकारी, जिनका हमने साक्षात्कार किया, ने इस परिघटना को यह कहकर समझाया कि 'क्योंकि ये मामले संगीन हैं, हम सारे मामलों को अदालत भेज देते हैं'.

मप्र के वन विभाग के तौर-तरीके पर चर्चा करते हुए एक पर्यावरण वकीलने साक्षात्कार में हमें बताया कि राज्य सरकार की 'समझौता नहीं करने का समर्थन करने वाली नीति' ने मप्र को देश में डब्ल्यूपीए के तहत

उच्चतम सजा दर वाला राज्य बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है. उन्होंने टिप्पणी की, "शिकार के विभिन्न कारण, चाहे जीवन निर्वाह के लिए हो या नहीं, होने के कारण डब्ल्यूपीए के लिए आपराधिक कानून आवश्यक है. अवैध व्यापार क्षेत्र में इनकी संख्या घट रही है और इसलिए अपराध का वर्गीकरण शायद उतना बेहतर नहीं है". बैहर जिला अदालत के एक अन्य वकील का विचार था यह निवारण (भय द्वारा) को बढ़ावा देने के लिए किया गया था, ताकि लोगों को सनद रहे कि वे चाहे जो भी अपराध करें, उन्हें जेल की सजा का सामना करना पड़ेगा.'कोर्ट से सब डरते हैं, डर बनाए रखने के लिए [वन विभाग] समझौते द्वारा निपटारा नहीं करता.'

ङ. वन्यजीव संरक्षण के कानूनी संरचना के अन्य पहलू

अ. आपराधिक कानून का मूल सिद्धांत: निर्दोषता की अवधारणा

शायद आपराधिक कानून में प्रक्रियागत निष्पक्षता का सबसे महत्वपूर्ण नियम निर्दोषता (बेगुनाही) की अवधारणा है, जिसमें कहा गया है कि किसी अभियुक्त को तब तक निर्दोष माना जाना चाहिए जब तक कि वह दोषी साबित न हो जाए. यह बुनियादी नियम है क्योंकि यह माना जाता है कि दोषी को सजा नहीं देना निर्दोष को दोषी ठहराने से बेहतर है. ऐसा आपराधिक मुकदमे में अभियुक्त के मौलिक अधिकारों और मानवीय गरिमा की रक्षा के लिए किया जाता है. ऐसे मुक़दमे असमान पक्षों अर्थात् राज्य और अभियुक्त के बीच का कानूनी मामला होते हैं. अभियुक्त को सजा के गंभीर सामाजिक और कानूनी दुष्प्रभावों से बचाकर, जब तक कि उनका अपराध निर्णायक रूप से साबित नहीं हो जाता है, यह नियम अभियुक्त की मौलिक स्वतंत्रता और गरिमा की रक्षा करता है. हालांकि, 'निर्दोषता की अवधारणा' को प्राप्त बहुत पवित्र दर्जे के बावजूद, विशिष्ट क़ानून स्पष्ट रूप से बेगुनाही साबित करने की जिम्मेदारी के सिद्धांत को उलट सकते हैं. 'दोषी साबित होने तक निर्दोष' को 'निर्दोष साबित होने तक दोषी' के साथ बदलकर, ये क़ानून पूरी तरह से निर्दोषता के सिद्धांत को कमजोर करते हैं और अभियुक्त को एक अनुमानित दोषी व्यक्ति में बदल देते हैं, जिसे अपनी बेगुनाही साबित करनी होगी. रिवर्स ऑनस क्लॉज अभियोजन पक्ष के कानूनी जिम्मेदारी को उस बिंदु तक कम कर देता है जहां अभियोजक को आपराधिक कृत्य को साबित करने के लिए केवल न्यूनतम (जिसे मौलिक या निर्धारक तथ्य के रूप में भी जाना जाता है) सबूतों की आवश्यकता होती है. पेश किए गए अपर्याप्त सबूतों के आधार पर अभियुक्त का अपराध स्वीकार कर लिया जाता है और आपराधिक मनःस्थिति की अनुपस्थिति को साबित करने की जिम्मेदारी अभियुक्त पर आ जाती है. ऐसी परिस्थितियों में, अभियुक्तों का कर्तव्य, जिसे 'प्रेरक जिम्मेदारी' के रूप में भी जाना जाता है, अंतिम या कानूनी है क्योंकि अभियुक्तों को दोषी ठहराया जाएगा यदि वे इस कर्तव्य का निर्वहन करने में विफल रहते हैं.

डब्ल्यूपीए की धारा 57 में रिवर्स ऑनस क्लॉज डाला गया है. यह बेगुनाही साबित करने की जिम्मेदारी के सिद्धांत या निर्दोषता की अवधारणा को उलट देता है जब यह स्थापित हो जाता है कि, 'किसी व्यक्ति के कब्जे, अभिरक्षा या नियंत्रण में कोई बंदी पशु, पशु से बने सामान, मांस, ट्रॉफी (सिर, खाल या पशु शरीर के किसी अन्य अंग), असंसाधित ट्रॉफी, निर्दिष्ट पौधे, या उसके भाग या व्युत्पन्न हैं, ऐसा माना जाता है जब तक कि इसके विपरीत साबित नहीं हो जाता है और जिसे साबित करने की जिम्मेदारी अभियुक्त पर होगी, कि ऐसा व्यक्ति ऐसे बंदी पशु, पशु से बने सामान, मांस, ट्रॉफी (सिर, खाल या पशु शरीर के किसी अन्य अंग), असंसाधित ट्रॉफी, निर्दिष्ट पौधे, या उसके भाग या व्युत्पन्न का विधिविरुद्ध कब्जा, अभिरक्षा या नियंत्रण रखता है.

अभियुक्त पर ही खुद को बेगुनाह साबित करने की जिम्मेदारी (रिवर्स बर्डन्स) डालने को सही ठहराने के संबंध में कई कारण प्रस्तुत किए जा सकते हैं. इनमें सबसे ज्यादा प्रस्तुत कारण नीतिगत औचित्य है जो सार्वजनिक हित को उस अपराध के दायरे से जोड़ता है जिसके खिलाफ लड़ाई लड़ी जा रही है.यह तर्क आमतौर पर अपराध की प्रकृति के इर्द-गिर्द घूमता है, विशेष रूप से वे अपराध जो आम तौर पर समाज और सार्वजनिक कल्याण को व्यापक नुकसान पहुंचाते हैं, उन अपराधों के विपरीत जिनके पीड़ितों की पहचान की जा सकती है. इसके अलावा, सरकार का मानना है कि वन्यजीव अपराधों जैसे कुछ अपराधों से सख्ती से निपटा जाना चाहिए, जिससे देश की आपराधिक प्रक्रिया के लिएपहले से जरूरी पारंपरिक शर्तों में बदलाव को उचित ठहराया जा सके. एक और औचित्य साक्ष्य एकत्र करने के दौरान अभियोजन द्वारा सामना की जाने वाली तार्किक चुनौतियों का प्रस्तुत किया जाता है.यह तर्क प्रस्तुत किया जाता यह है कि अभियोजन पक्ष के लिए उन विषयों के बारे में सबूत पेश करना चुनौतीपूर्ण है जो अभियुक्तों को पूरी तरह से या असामान्य रूप से ज्ञात हैं. चूंकि रिवर्स बर्डन्स सुनवाई को त्वरित, सरल और कम खर्चीला बनाता है, इसलिए यह औचित्य न्यायिक अर्थव्यवस्था और प्रशासनिक सुविधा के युक्ति संगतिकरण को भी ध्यान में रखता है, जिससे बहुमूल्य संसाधनों की बचत होती है जो अन्यथा केवल अभियुक्तों को ज्ञात जानकारी की जांच-पड़ताल के लिए उपयोग किया जाता. यह देखा गया है कि इन धाराओं से उचित संदेह से परे सबूत के सख्त मानक की तुलना में दोषसिद्धि दर में वृद्धि हुई है जिससे निवारण उद्देश्य को बढ़ावा मिला है.

हालाँकि, रिवर्सल ऑफ़ बर्डन के साथ कई समस्याएं भी जुड़ी हैं. पहला यह कि अभियोजक न केवल यह तय करते हैं कि आरोपी के खिलाफ कौन से आरोप लगाए जाएं, बल्कि यह भी कि आपराधिक कृत्य को प्रमाणित करने के लिए कितने साक्ष्य की आवश्यकता है. इसके अलावा, सबूत पेश करने की प्रक्रिया अभियोजन पक्ष की मदद करती है. नतीजतन, अभियुक्तों के लिए यह साबित करना कठिन है कि वे आपराधिक मनःस्थिति वाले नहीं हैं जैसा कि अभियोजन पक्ष ने आरोप लगाया गया है. ज्यादातर परिस्थितियों में, अभियुक्त की तुलना में अभियोजन पक्ष की तहकीकात संबंधी संसाधनों तक अधिक पहुंच होती है और परिणामस्वरूप, बेगुनाही साबित करने का प्रयास करने वाले अभियुक्त की तुलना में अपराध को प्रमाणित करने वाले की बेहतर स्थिति होती है. दूसरी बात, इस धारणा का अभियुक्त द्वारा किसी महत्वपूर्ण तथ्य को साबित करने की उनकी क्षमता से कोई संबंध नहीं है कि उसके पास अपराध से संबंधित कुछ विशेष गुप्त जानकारी है. न्यायिक खर्च के बारे में जो दावा किया जाता है कि सिर्फ अभियुक्त ही यह बता सकता है कि वो क्या जनता है और इस तरह समय और धन की बचत होगी, यह धारणा बिल्कुल गलत है. यहां तक कि अगर कोई मानता है कि वह निर्दोष है, तो वह ऐसा होने की संभावना को दिखाने में सक्षम नहीं हो सकता है और इस प्रकार यह दावा गलत है कि तथ्य की जानकारी और इसे साबित करने में आसानी के बीच कोई संबंध है.

ब. जांच के दौरान डीएफओ और एसडीओ के समक्ष दिए गए बयान की मान्यता

चूंकि प्रेस ने खाकीधारी पुलिस अधिकारियों के दुर्व्यवहारों की बड़े पैमाने पर रिपोर्टिंग की है, इसलिए आज कुछ लोग प्रतिष्ठान के संदिग्ध विशिष्टता का विरोध करते हैं. 1860 के दशक में जब सर जेम्स फिट्ज़जेम्स स्टीफ़न भारतीय साक्ष्य अधिनियम (आईईए) का मसौदा तैयार कर रहे थे, तब भी अपराध की स्वीकारोक्ति के लिए पुलिस अधिकारियों द्वारा अभियुक्तों के साथ अत्यधिक बल प्रयोग करने की प्रवृत्ति एक समस्या थी. इससे निपटने के लिए आईईए की धारा 25 को शामिल किया गया, जो एक अभियुक्त द्वारा पुलिस अधिकारी के समक्ष की गई किसी भी स्वीकारोक्ति को अदालत में अस्वीकार्य बनाती है. सामान्य कानून की लीक से हटकर धारा 25 को शामिल करने का मूल मकसद कबूलनामा प्राप्त करने के प्रयास में पुलिस

को यातना देने से रोकना था.

दुर्भाग्य से वन्यजीव अधिकारियों को इस परिभाषा के दायरे में नहीं लाया गया है. जैसा कि ऊपर के खंडों में देखा गया है, जिन 16 अभियुक्तों का हमने साक्षात्कार किया, उनमें से सभी ने हिरासत में यातना की शिकायत की, जो यातना वन्य जीवन अधिकारियों ने उन्हें कबूलनामा हासिल करने के लिए दी थी. यह इसका स्पष्ट उदाहरण है यह इन अभियुक्तों को आईईए के तहत सुरक्षा उपाय प्रदान करना कितना आवश्यक है, ताकि उन्हें वन अधिकारियों द्वारा खुद को दोषी ठहराने के लिए मजबूर न किया जाए.

भारत ने अपराध की विशेष श्रेणियोंसे संबंधित मामलों का त्वरित और प्रभावशाली निपटारा सुनिश्चित करने के लिए कई विशेष कानून बनाए हैं, जिनमें से एक कानून डब्ल्यूपीए है.डब्ल्यूपीएकी धारा 50(8) कहता है, 'किसी भी अधिकारी, जो वन्यजीव संरक्षण के सहायक निदेशक के स्तर से नीचे का अधिकारी नहीं है या इस संबंध में राज्य सरकार द्वारा अधिकृत सहायक वन संरक्षक के पद से नीचे का अधिकारी नहीं है, के पास किसी भी अपराध की जांच करने की शक्तियाँ होंगी.' वन अधिकारियों को साक्ष्य प्राप्त करने और दर्ज करने, तलाशी वारंट जारी करने, गवाहों की खोज के लिए दबाव डालनेऔर उनकी उपस्थिति सुनिश्चित करने जैसे कार्य संपादित करने के अधिकार हैं, जो कार्य पारंपरिक आपराधिक न्याय प्रक्रियाओं में न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाता है. वन्यजीव जांच नियमावली में कहा गया है कि एकत्र किए गए सबूत या वन अधिकारी के सामने की गई स्वीकारोक्ति मान्य है. डब्ल्यूपीए की धारा 50(8) पर्याप्त प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों, जैसा कि आईईए की धारा 24 के तहत प्रदान किया गया है, के बिना स्वीकारोक्ति दर्ज करने की अनुमति देती है.

हालांकि, थमीम अंसारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य मामले में आवेदक ने उप वन संरक्षक और क्षेत्रीय टाइगर स्ट्राइक फोर्स सागर (म.प्र.) के प्रभारी द्वारा दायर शिकायत के आधार पर की गई कार्यवाही को रद्द करने की याचिका दायर की. याचिका खारिज कर दी गई और ऐसा करने का एक तर्क यह था कि धारा 50 (8) के तहत आरोपी ने बयान दिया और अपराध स्वीकार किया. इस आधार पर कोर्ट ने धारा 50(8) पर व्यापक चर्चा तो नहीं की लेकिन याचिका खारिज कर दी. इसलिए, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि डब्ल्यूपीए जांच के दौरान अभियुक्तों से व्यवहार संबंधी उचित प्रक्रिया प्रदान नहीं करता है क्योंकि नियमित आपराधिक जांच और सुनवाई के दौरान प्रदान के गई सुरक्षा उपायों के विपरीतवन अधिकारी को दी गई शक्तियां अनियंत्रित हैं. गिरफ्तार करने वाली एजेंसी या गिरफ्तार करने वाली एजेंसी के विभाग के सामने आरोपी व्यक्ति का बयान और उसकी स्वीकार्यता एक ऐसा सवाल है जिस पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए.

निष्कर्ष

हमारे फील्डवर्क के निष्कर्ष वनों पर राज्य के नियंत्रण के लिए संघर्ष की पृष्ठभूमि के खिलाफ डब्ल्यूपीए की संरचना के एक हिस्से के रूप में गंभीर अपराधीकरण को प्रमाणित करते हैं. हमारे फील्डवर्क के निष्कर्ष वन अधिकारियों और कानून का कार्यान्वयन और इसे प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों को प्राप्त अत्यधिक शक्तियों और अधिकार एवं इनके द्वारा होने वाली अनियमितताओं और प्रक्रिया के दुरुपयोगको रेखांकित करते हैं. हमने यह सामने लाया है कि कैसे 'अपराधों' का पता लगाने के लिए मुखबिरों पर जरूरत से ज्यादा निर्भरता हैजो विभिन्न कारणों के कारण पनपा और अब फलता-फूलता रहा है. इन कारणों में राज्य से

संबद्ध होने से मिलने वाली प्रभाव की भावनाऔर वन आश्रित समुदायों के बीच के आपसी संघर्षशामिल हैं. इसके अलावा, एक बार अपराध का पता चलने और इनमें सेअधिकांश के डब्ल्यूपीए के तहत जमानती होने के बावजूद, वन अधिकारी गिरफ्तारियां करने के लिए प्रवृत्त होते हैं जो सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशों के अनुसार अनिवार्य नहीं हैं. गिरफ्तारियों में कई अनियमितताएं पाई गईं और लगभग हर मामले में लोगों ने हिरासत में हिंसा की शिकायत की.डब्ल्यूपीए के तहत अधिकांश अपराधों के जमानती होने के बावजूद निचली न्यायपालिका से इसके मामलों में जमानत प्राप्त करना कठिन बना दिया गया हैक्योंकि वन्यजीव अपराधों को बड़े पैमाने पर'देश की पारिस्थितिक और पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए खतरा' के रूप में देखा जाता है. वन आश्रित समुदायों की कमजोर आर्थिक स्थिति को देखते हुए, उनके लिए जमानत प्राप्त करना बहुत खर्चीला है. इसके अलावा, वन आश्रित समुदायों के बीच डर पैदा करने के लिए, कई मामलों में समझौते की संभावना होने के बावजूदविभाग जानबूझकर समझौतेसंबंधी प्रावधानों को लागू नहीं करने पर जोर देता है. डब्ल्यूपीएके तहत वन विभाग, पुलिस अधिकारियों की तरह'आदतन अपराधियों' की निगरानी के लिए विभिन्न रजिस्टरों में उनकी विस्तृत जानकारी का विवरण रखता है, जबकि 'आदतन अपराधियों' की स्पष्ट परिभाषा और जवाबदेही तय करने संबंधी उपायमौजूद नहीं हैं. इसके अलावा, सुनवाई के दौरान बेगुनाही साबित करने का भार अभियुक्तों पर डाल दिया जाता है और नियत वन अधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए बयानों को स्वीकार्य और मान्य माना जाता है.

लोकप्रिय धारणा यह है कि ये गिरफ्तारियां वन्यजीवों और विशेष रूप से 'आकर्षक प्रजातियों' की रक्षा के लिए की जाती हैं, लेकिन इसके विपरीत गुणात्मक आंकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष यह बताते हैं कि कि दर्ज किए जा रहे अधिकांश अपराध अनुसूची III और IV के जानवरों, 'अवैध प्रवेश' और वन उपज एकत्र करने से संबंधित हैं. जंगली सूअर की समस्या, मछली पकड़ने से संबंधित अपराध, जंगल तक पहुंच और मानव-वन्यजीव संघर्ष के कारण जानवरों की दुर्घटनावश मृत्यु वन्यजीव अपराधों का प्रमुख हिस्सा हैं. जैसा कि वन अधिकारियों ने हमारे साक्षात्कारों में स्वीकार किया है, मंडला और बालाघाट में व्यावसायिक शिकार का शायद ही कोई मामला सामने आता है.दूसरी तरफ, ग्रामीणों और वन अधिकार कार्यकर्ताओं के साथ हमारे साक्षात्कारों से यह बात सामने आई कि पीए के निर्माण से बड़े पैमाने पर विस्थापन हुआ, जिससे वनआश्रित समुदायों, विशेष रूप से बैगा समुदाय को अनिश्चितता की स्थिति में धकेल दिया गया है. इन विस्थापित गांवों के लोगों के वन भूमि संबंधी अधिकार और वन एवं वन उपज तक इनकी पहुंच खतरे में है. साथ ही इन पर पर्याप्त मुआवजा नहीं मिलने औरइनके अपराधीकरण का खतरा भी मंडरा रहा है. यह सब डब्ल्यूपीए में सन्निहित संरक्षणवादी दृष्टिकोण का परिणाम है.यह औपनिवेशिक नीति की निरंतरता है जिसमें कुछ जनजातियों का अपराधीकरण किया गया था क्योंकि उन्हें अपनी आजीविका और जंगलों की सुरक्षा के लिए लड़ने वाले ऐसे समूहों के रूप में देखा गया था जो ब्रिटिश औपनिवेशिक तंत्र के लिए खतरा थे. इस प्रकार ब्राह्मणवादी पर्यावरणवाद उपरोक्त फॉर्ट्रेस कंजर्वेशन (ज़बरन विस्थापन या मौजूदा निवासियों के बहिष्करण द्वारा वन्यजीवों के लिए संरक्षित क्षेत्रों का निर्माण) दृष्टिकोण का आधार तैयार करता है, जिसके परिणामस्वरूप वन आश्रित समुदायों के आजीविका और अधिकारों के समक्ष गंभीर संकट पैदा हो गया है.

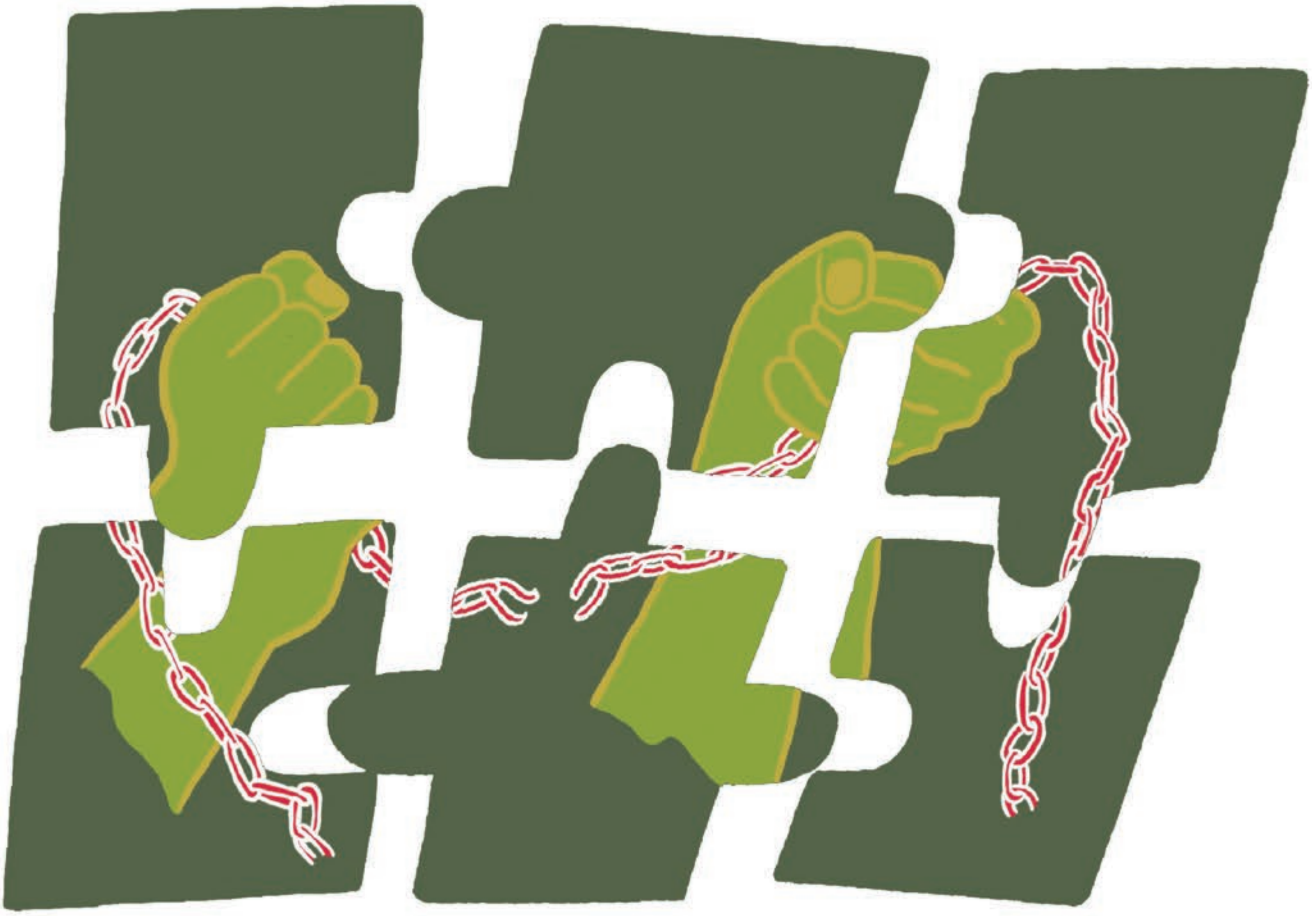

९. निष्कर्ष

डब्ल्यूपीए को संरक्षित वन क्षेत्रों के निर्माण से लेकर शिकार के खेल के नियमन तक के साधन के रूप में पुनः प्रस्तुत किया गया, जिसमें जाति व्यवस्था की शुद्धता की धारणा जानवरों तक विस्तारित की गई है. जैसा कि अभय खाखा कहते हैं, वन प्रशासन की संरचना गैर-राजकीय किरदारों द्वारा समर्थित पर्यावरण संरक्षण की ब्राह्मणवादी धारणाओं से भरी पड़ी हैं. वन्य जीव संरक्षण का सवर्ण परिकल्पना में केन्द्रीय स्थान है. प्रोजेक्ट टाइगर और प्रोजेक्ट एलिफेंट जैसी परियोजनाओं को लगातार महत्व दिए जाने को एसटी और अन्य वन आश्रित समुदायों को मान्यता देने से इंकार करने के रूप में देखा जाता है जो ब्राह्मणवाद आधारित पर्यावरण संरक्षण से संचालित वन संरक्षण को अभिव्यक्त करता है. डब्ल्यूपीए एसटी समुदायों को 'अतिक्रमणकारी' और 'प्रदूषणकारी' के रूप में प्रस्तुत करने का एक साधन है और इसलिए उन्हें संरक्षित क्षेत्र (पीए) से अलग रखने के प्रयास हुए हैं ताकि उन संरक्षित क्षेत्रों का सफलतापूर्वक संरक्षण किया जा सके. दूसरी ओर, इन संरक्षित क्षेत्रों का निर्माण ऐसे पर्यटन केंद्र साबित हुए हैं, जिससे वन विभाग को उच्च राजस्व प्राप्त होता है.

वन आश्रित समुदायों का अपराधीकरण करने वाली डब्ल्यूपीए की पुलिस कार्यप्रणाली

इस कानून के तहत आरोपित अधिकांश अभियुक्त हाशिए के समुदायों, मुख्य रूप से अनुसूचित जनजाति और जंगलों में रहने वाले अन्य समुदाय, से हैं. वन विभाग के आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि डब्ल्यूपीए के तहत दर्ज लगभग 64% मामले अधिनियम की अनुसूची III, IV और V के तहत संरक्षित जानवरों से संबंधित हैं. रिसर्च से संबंधित फील्डवर्क इस निष्कर्ष की पुष्टि करता है और बताता है कि इनमें से अधिकांश मामले जंगली सूअर, चीतल और सांभर जैसे कुछ जानवरों द्वारा वन आश्रित समुदायों के आजीविका के समक्ष प्रस्तुत खतरों से संबंधित हैं. इसके अलावा, आंकड़ों से पता चलता है कि जलजीव, जो डब्ल्यूपीए के तहत संरक्षित नहीं हैं और जिनके शिकार को सामुदायिक अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है, के शिकार का भी पीए के अन्दर और उसके आसपास अपराधीकरण किया जा रहा है. शहद, मशरूम, इमारती लकड़ी जैसे वन उपज इन समुदायों की आजीविका का अनिवार्य हिस्सा हैं. इनके संग्रह के लिए जंगल में 'अवैध प्रवेश' के मामले दर्ज कर इन्हें अपराध बनाया जा रहा है.

समुदायों के अपराधीकरण में, यहां तक कि गैर-लुप्तप्राय प्रजातियों से संबंधित मामलों में पुलिस अधिकारों का व्यापक इस्तेमाल

डब्ल्यूपीए पुलिस और वन अधिकारियों को शिकार या यहां तक कि शिकार के प्रयास के लिए लोगों के बड़े समूहों के अपराधीकरण संबंधी व्यापक अधिकार प्रदान करता है. वन्यजीव संरक्षण के लिए पुलिस कार्यप्रणाली के तहत वन विभाग द्वारा तलाशी और जब्ती संबंधी अधिकारों का मनमाने ढंग से प्रयोग संरक्षित क्षेत्रों में वन आश्रित समुदायों की गरिमा का उल्लंघन करता है.

जमानत के अध्ययन के निष्कर्षों से पता चलता है कि वन्यजीव संबंधी अपराधों के जमानती मामलों में गिरफ्तार होने के बावजूद वन आश्रित समुदायों को निचली अदालतों से जमानत प्राप्त करने में कठिनाई होती है. इसका कारण यह है कि वन्यजीव अपराधों को पारिस्थितिक खतरों के रूप में देखा जाता है. ज़मानत आमतौर पर उच्च न्यायालय से मिलती है और ज़मानत प्राप्त करने का खर्च समुदायों की आर्थिक कठिनाइयों को बढ़ा देता है. वन्यजीव संबंधी पुलिस कार्यप्रणाली के औपनिवेशिक विचार किसी व्यक्ति को

आदतन अपराधी ठहराते हैं, भले ही उसकी कोई दूसरी परिभाषा मौजूद हो. एक से अधिक मामलों में आरोपित व्यक्तियों की वन अधिकारियों द्वारा निगरानी की जाती है. ऐसी प्रजातियों, जिनसे जुड़े अपराध के लिए समझौता किया जा सकता है, के मामलों में भी समझौता नहीं किया जाता है ताकि वन आश्रित समुदायों के बीच भय के जरिए अपराध की रोकथाम की जा सके.

बेगुनाही साबित करने के सामान्य नियम और निर्दोष होने की धारणा को उलट दिया गया है जिससे डब्ल्यूपीए के प्रावधानों के तहत फंसे वन आश्रित समुदायों के लिए एक और कानूनी जाल बुना जा रहा है.

वन अधिकारों में सुनियोजित कटौती: वन आश्रित समुदायों के बीच डब्ल्यूपीए मामलों का खौफ़

एफआरए वन में रहने वाले अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारंपरिक वन निवासी समुदायों के खिलाफ हुई ऐतिहासिक अत्याचार को ख़त्म करने के लिए लागू किया गया. इसके तहत उन्हें वन भूमि पर व्यक्तिगत, सामुदायिक और आवास अधिकारों के रूप में वन संसाधनों तक पहुंच प्रदान किया गया है. कानून के प्रावधानों के विपरीत वन्यजीव संरक्षण और संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना के नाम पर जंगल में रहने वाले समुदायों को इन क्षेत्रों से विस्थापित कर और इन तक उनकी पहुंच को प्रतिबंधित कर एफआरए प्रावधानों को लगातार कमजोर किया जा रहा है.

इसके अलावा, मध्य प्रदेश के संरक्षित क्षेत्रों में मछली पकड़ने के लिए भी वन आश्रित समुदायों का अपराधीकरण किया जाता है. वर्तमान शोध के दौरान, हमें ऐसे मामले मिले जहां एफआरए के तहत मान्यता प्राप्त मछली पकड़ने के अधिकारों पर डब्ल्यूपीए के तहत रोक लगा दी गई और वन विभाग द्वारा मछली पकड़ने के लिए मामले दर्ज किए गए जबकि ये डब्ल्यूपीए के तहत संरक्षित प्रजाति नहीं है. इस शोध में ऐसे मामलों का अध्ययन किया गया जिनमें दुर्घटनावश मारे गए जंगली जानवरों के मामलों में वन अधिकारियों द्वारा वन आश्रित समुदायों को गलत तरीके से फंसाया गया. फसलों को जंगली जानवरों से बचाने के लिए लगाए गए बिजली के तार की बाड़ के कारण जंगली सूअर जैसे जंगली जानवरों की दुर्घटनावश मौत को वन अधिकारियों द्वारा आपराधिक कृत्य माना जाता है, इसके बावजूद कि ऐसी घटनाओं के लिए डब्ल्यूपीए की धारा 11 (2) के तहत मामला दर्ज किया जाता है. जानवरों द्वारा फसल नष्ट करने पर मुआवजे नहीं मिल पाने से यह स्थिति और भी गंभीर हो जाती है. यह स्पष्ट है कि वन्यजीव पुलिस कार्यप्रणाली वन संरक्षण के मौजूदा मॉडल में हाशिए के वन आश्रित समुदायों को कोई राहत प्रदान नहीं करती है.

यह रिपोर्ट एफआरए लागू होने के बावजूद, आदिवासी और वन आश्रित समुदायों को लंबे समय से बेदखल किए जाने का प्रमाणिक दस्तावेज है. हाल ही में विद्वानों और कार्यकर्ताओं द्वारा इस बात पर जोर दिया गया है कि वन्यजीव संरक्षण के केंद्र में समुदायों को रखा जाना चाहिए. हालाँकि, वन आश्रित समुदायों के अधिकारों को सुरक्षा या मान्यता के किसी भी प्रयास के लिए यह जरूरी है कि वन्यजीव संरक्षण की परियोजना को ब्राह्मणवादी चरित्र से मुक्त किया जाए.